बाल जीवनी माला

१. डारविन	अशोक घोष
२. आइजक न्यूटन	ओमप्रकाश आर्य
३. शरतचन्द्र	विष्णु प्रभाकर
४. रामानुजन	डा. वजीर हसन आब्दी
५. जगदीशचन्द्र बसु	सुभाष मुखोपाध्याय
६. मिर्जा गालिब	रजिया सज्जाद जहीर
७. निराला	डा. रामविलास शर्मा
८. आर्किमीडिज	गुणाकर मुले
९. भास्कराचार्य	गुणाकर मुले
१०. सी. वी. रामन	विश्वमित्र शर्मा
११. एडिसन	शंकरलाल पारीक
१२. वाल्तेयर	देवीप्रसाद
१३. प्रफुल्लचन्द्र राय	राजीव सक्सेना
१४. मादाम क्यूरी	गीता बन्दोपाध्याय
१५. गेलीलियो	ओमप्रकाश आर्य
१६. पास्कल	गुणाकर मुले
१७. आइंस्टाइन	युगजीत नवलपुरी
१८. केपलर	गुणाकर मुले
१९. राहुल सांकृत्यायन	भदन्त आनन्द कौसल्यायन
२०. बंकिमचन्द्र	विष्णु प्रभाकर
२१. प्रेमचन्द	नागार्जुन
२२ कॉपर्निकस	डा. वजीर हसन आब्दी
२३. लुई पाश्चर	शंकरलाल पारीक
२४. मेंडेलीफ	गुणाकर मुले

प्रत्येक का मूल्य ३ रुपये ५० पैसे

बाल जीवनी माला
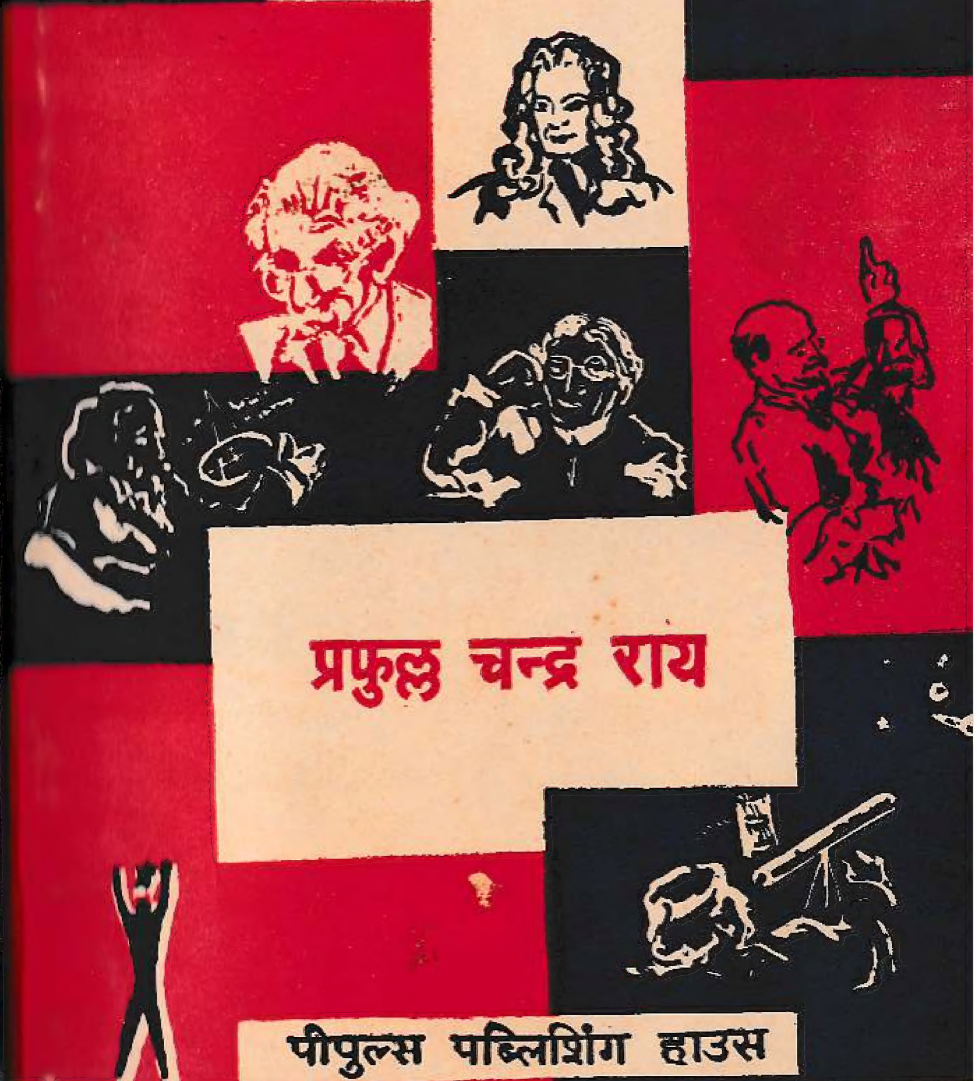
प्रफुल्ल चन्द्र राय

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
रानी झांसी रोड, नई दिल्ली

पहला हिन्दी संस्करण अगस्त १९६१
दूसरा हिन्दी संस्करण नवम्बर १९६४
तीसरा हिन्दी संस्करण , १९७९

लेखक राजीव सक्सेना

मूल्य : ३ रुपये ५० नये पैसे

जितेन सेन द्वारा न्यू एज प्रिंटिंग प्रेस, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली में मुद्रित और उन्हीं के द्वारा पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा०) लिमिटेड नई दिल्ली की तरफ से प्रकाशित ।

प्रफुल्ल चन्द्र राय

: एक :

"अरे ओ देहाती !"

शहरी लड़कों की शान तो देखो ! अपने को न जाने क्या समझते हैं ! छींटा कसा, खिलखिला कर हंसे और अकड़ दिखाते हुए चल दिये ।

गांव से आया हुआ वह लड़का ! बेचारा शरमा कर रह गया । गांव में रहना भी मानो कोई अपराध है !

ऐसा आज भी होता है और सौ वर्ष पहले भी होता था । बात यह है कि अंग्रेजों ने इस देश पर अधिकार कर लिया तो अंग्रेजी पढ़े-लिखे और बाबूगीरी करने वाले लोगों की अच्छी-खासी तादाद हो गयी । ये लोग शहरों में अंग्रेज अफसरों की चाकरी करते । करते तो अंग्रेजों की चाकरी, पर रहन-सहन में उनकी नकल करते । इतने से ही वे अपने को उन करोड़ों लोगों से ऊंचा समझने लगते जो गांवों में रहते हैं ।

सन १८७० की बात है।

कलकत्ते का हेयर स्कूल। पूर्वी बंगाल के रड़ौली गांव के एक लड़के ने इस स्कूल में नाम लिखाया। गांव का लड़का, कपड़े शहरी पहन लिये। मगर कपड़े पहन लेने से चाल-ढाल थोड़े ही बदलती है। बस, शहरी लड़के उसको चिढ़ाने लगे।

क्या नाम था इस लड़के का?

नाम था : प्रफुल्ल चन्द्र राय!

प्रफुल्ल चन्द्र को अपने गांव पर गर्व था।

रड़ौली कोई मामूली गांव नहीं था। इस गांव के लोगों ने सदा अपनी शान का झण्डा ऊंचा रखा। राजा प्रतापादित्य और राजा सीताराम राय इसी क्षेत्र के थे जिन्होंने दिल्ली के सुल्तानों और उनके गवर्नरों (नवाबों) की सत्ता कभी नहीं मानी। कई बार लड़ाई में उनके दांत खट्टे किये। बंगाल के महाकवि माइकेल मधुसूदन दत्त इसी गांव के नाती थे। बालक प्रफुल्ल के जमाने के सबसे बड़े नाटककार दीनबन्धु मित्र भी इसी क्षेत्र के निवासी थे।

इसी गांव में २ अगस्त, १८६१ के दिन बालक प्रफुल्ल का जन्म हुआ।

पिता हरिश्चन्द्र राय इस गांव के जमींदार थे। पुराने किस्म के, दकियानूसी आदमी नहीं थे वह। गांव

में मौलवी से अरबी फारसी पढ़ने के अलावा कृष्णनगर में अंग्रेजी की शिक्षा भी पायी थी। अक्सर कलकत्ता आते रहते। उस समय के करीब-करीब सभी समाज-सुधारकों से उनका परिचय था। जतीन्द्र मोहन टैगोर, दिगम्बर मित्र, कृष्टोदास पाल और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से उनकी मित्रता थी। उन्होंने गांव में पहला स्कूल भी कायम किया था।

बालक प्रफुल्ल ने इसी स्कूल में प्रारम्भिक शिक्षा पायी। प्रारम्भिक शिक्षा के बाद पिता अपने बच्चों को कलकत्ता ले आते।

बालक प्रफुल्ल अकड़ू लड़कों से सदा अलग रहता और पढ़ने-लिखने में जी लगाता। पिता के पास किताबों का अच्छा-खासा भण्डार था। इन्हीं में उसे जीवनचरित्रों की एक पुस्तक मिल गयी। न्यूटन, गैलीलियो, बेन्जामिन फ्रेंकलिन के जीवन-चरित्र। इनकी जीवनियां पढ़ कर बालक प्रफुल्ल की आंखें खुल गयीं। उसे

सबसे खास बात यह लगी कि ये सभी बड़े लोग मामूली घरों में पैदा हुए थे। अपनी लगन और मेहनत से उन्होंने अपने को इतना बड़ा बना लिया कि दुनिया में आज भी लोग उन्हें याद करते हैं।

बेन्जामिन फ्रेंकलिन का जीवन-चरित्र तो बालक प्रफुल्ल को बहुत आकर्षक लगा। अमरीका में पेन्सिलवानिया की देहात का वह बालक। दस वर्ष की उम्र। पेट भरने की चिन्ता में फंस गया। मामूली पढ़-लिख पाया था। प्रेस में कम्पोजीटर की नौकरी की। पेट तो भरने लगा, मगर ज्ञान की भूख कैसे मिटे? सो उसने किताबें बेचने वाले से दोस्ती की। रात को दूकान बंद होने से पहले किताब मांग लाता। रात भर पढ़ता, सुबह वापस कर आता...

फ्रेंकलिन ने बिजली के बारे में ऐसे अद्भुत आविष्कार किये कि दुनिया ही बदल गयी। अमरीका के स्वतंत्रता-संग्राम को सफल बनाने में भी फ्रेंकलिन मैं आगे बढ़ कर हिस्सा लिया।

वैज्ञानिक और देशभक्त!...

बालक प्रफुल्ल ने तय कर लिया कि वह भी वैज्ञानिक बनेगा और बड़े-बड़े काम कर दिखायेगा।

पिता के पुस्तकालय में अंग्रेजी का एक कोष था

जिसमें तमाम महान लेखकों की रचनाओं के उद्धरण थे। बालक प्रफुल्ल ने उनमें से तमाम उद्धरण रट लिये। उनमें से एक एक उद्धरण यह भी था :

"भगवान का अभिशाप है अज्ञान,
है ज्ञान ऐसा पंख जिससे आप
स्वर्ग तक कर लें महान उड़ान!"
—शेक०

बालक प्रफुल्ल को नहीं मालूम था कि "शेक०" का क्या मतलब होता है। बड़े भाई ने उसके मुंह से यह उद्धरण सुना तो आश्चर्य-चकित रह गया। तभी बालक प्रफुल्ल को मालूम हुआ कि "शेक०" का मतलब है : शेक्सपीयर! महान अंग्रेजी कवि नाटककार शेक्सपीयर, जिसकी ४००वीं वर्षगांठ इस साल दुनिया भर में मनाई गयी है।

सो, प्रफुल्ल में शेक्सपीयर के नाटक पढ़ डालने का शौक पैदा हो गया।

इतिहास और जीवन चरित्र की पुस्तकें पढ़ने में बालक प्रफुल्ल को इतना आनन्द आता कि भूख-प्यास-नींद, सब कुछ वह भूल जाता।

अक्सर होता यह है कि पिता और पुत्र के बीच दीवार खड़ी रहती है। पुत्र को पिता से डर लगता है।

पिता की लाल-पीली आंखें देख कर पुत्र को साहस नहीं होता कि पिता से बात कर ले।

पर बालक प्रफुल्ल के पिता ऐसे न थे। अपने पुत्रों के सभी प्रश्नों का उत्तर बड़े प्यार से देते। इसमें सन्देह नहीं कि बालक प्रफुल्ल को बढ़ावा देने में उन्होंने बड़ी मदद की।

लो, तुम्हें दो-एक मिसालें सुना दूं।

एक दिन की बात है। बालक प्रफुल्ल ने सोचा कि अपने पिता का भूगोल-ज्ञान परखे। सो उसने पूछा : "बाबा, सेवास्तोपोल कहां है ?" पिता ने नटखट बालक को झिड़का नहीं, बल्कि ऐसा जवाब दिया कि बालक प्रफुल्ल को सेवास्तोपोल के भूगोल का ही नहीं, बरन इतिहास का भी ज्ञान हो गया।

उन्होंने कहा : "क्या ? तुम सेवास्तोपोल की बात पूछते हो ! अरे, मेरी आंखों के सामने तो वह दृश्य नाच उठता है जब अंग्रेजों ने उसे घेर लिया था !"

अब सुन लो। उन्होंने इतना ही नहीं बताया कि सेवास्तोपोल रूस में है। बल्कि यह भी बता दिया कि रूस के सम्राट जार को अपने साम्राज्य पर बड़ा घमंड था और उसके घमंड को अंग्रेजी फौजों ने सेवास्तोपोल में चूर किया था।

प्रफुल्ल के पिता हरिश्चन्द्र राय वैसे कट्टर हिन्दू थे,

किन्तु पोंगापंथी नहीं थे। धार्मिक ढोंग और पाखण्ड से उन्हें घृणा थी। वह अक्सर कहा करते थे कि उनका कोई बेटा विधवा से विवाह करे तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता होगी।

बंगाल के समाज सुधारकों ने 'ब्रह्म समाज' नाम से जो सामाजिक आन्दोलन चलाया था, उसकी तरफ बालक प्रफुल्ल आकर्षित हुआ। वह ब्रह्म-समाजियों के भाषण सुनने जाता और उनके उदार विचारों का मनन करता।

ज्ञान की भूख...! कर्त्तव्य-निष्ठा...! देशभक्ति ! बालक प्रफुल्ल को ये सभी चीजें मानो घुट्टी में मिली थीं।

इसी बीच बालक प्रफुल्ल को अंग्रेजी लेखक मांडर्स लिखित "जीवन-चरित्र भंडार" पुस्तक पढ़ने को मिली।

दुनिया के एक हजार बड़े आदमियों का जीवन-चरित्र था इसमें। इस बालक ने उन सबके जीवन से कुछ-न-कुछ सीखा।

पर एक बात उसकी समझ में न आयी !

क्या बात थी जानते हो ?

उन एक हजार व्यक्तियों में बंगाली नाम एक ही था : राजा राममोहन राय।

क्या इस विशाल देश में महान व्यक्ति उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है ? उसने अपने जीवन से इस प्रश्न का उत्तर देने का निश्चय कर लिया।

: दो :

स्वस्थ शरीर तो स्वस्थ मस्तिष्क !

कहावत सच्ची है, लेकिन बिल्कुल सच्ची होती तो हर बड़ा पहलवान बड़ा भारी विद्वान बन जाता।

बालक प्रफुल्ल को माता-पिता से स्वस्थ शरीर मिला था। लेकिन १८७४ में, जब वह चौथे दरजे में था, उसे पेचिश के रोग ने धर दबाया। स्कूल छोड़ देना पड़ा। शरीर सूखकर कांटा हो गया। कहीं सात महीने बाद रोग शान्त हुआ।

रोग तो शांत हुआ, पर हाजमा ऐसा बिगड़ा कि जिन्दगी भर खाने-पीने, सोने-बैठने में नियमों का पालन करना जरूरी हो गया।

बालक प्रफुल्ल ने तमाम जीवन-चरित्र पढ़ रखे थे। वह जानता था कि ज्ञान बढ़ाने के लिए स्कूल के सबक रट लेना काफी नहीं है। तुम एडिसन की जीवनी पढ़ो तो तुम्हें पता चलेगा कि मास्टरों

की नजर में बालक एडिसन ऐसा मूर्ख था कि उसकी बुद्धि सुधरने की कोई आशा नहीं थी। अंग्रेजी के महान उपन्यास-लेखक सर वाल्टर स्काट के अध्यापक ने कहा था : यह लड़का गधा है और गधा रहेगा। रवीन्द्रनाथ और अंग्रेज कवि लार्ड बायरन गणित में कच्चे थे। गणित से उन्हें वैसे ही डर लगता था जैसे नासमझ आदमी को भूत से।

रही बीमारी की बात, सो जो मानव तूफानी नदियों को बांध लेता है, समुद्र और आकाश पर काबू पा लेता है, वह भला छोटी-मोटी बीमारी को क्या समझेगा। बालक प्रफुल्ल ने पढ़ रखा था कि विद्यार्थी जीवन में अंग्रेजी के महान दार्शनिक और सन्त कार्लाइल के पेट में इतने जोर से दर्द उठता था कि कई दिनों तक वह पागलों की तरह चीखते-चिल्लाते रहते। एक दूसरे विद्वान हर्बर्ट स्पेंसर का भी यही हाल था !

इन महान व्यक्तियों ने शरीर की व्याधियों पर विजय प्राप्त की।

कैसे ?

स्वास्थ्य के नियमों का पालन करके और हर रोज थोड़ा सा व्यायाम करके। बालक प्रफुल्ल ने इन्हीं को अपना आदर्श बनाया।

प्रसिद्ध दार्शनिक जेम्स स्टुअर्ट मिल के जीवन-चरित्र से भी बालक प्रफुल्ल को बड़ा ढाढ़स बंधा। बालक मिल के पिता जेम्स मिल ने पुत्र को कभी किसी स्कूल में नहीं भेजा था। वह खुद उसके मित्र, अध्यापक और पथ-प्रदर्शक थे। दस वर्ष की उम्र में बालक मिल ने लैटिन और ग्रीक भाषाएं भी सीख लीं। इंगलैण्ड, स्पेन और रोम का इतिहास भी पढ़ डाला।

सो बालक प्रफुल्ल ने बीमारी के सात महीनों के एक-एक दिन को अपना ज्ञान बढ़ाने में लगाया। पिता के पुस्तकालय से अंग्रेजी पुस्तकें तो पढ़ी हीं, देश के इतिहास और साहित्य की भी जानकारी प्राप्त की।

पिता के पुस्तकालय में

इन दिनों बंगाल में राष्ट्रीय भावना का ज्वार सा आ रहा था। **बंग दर्शन, आर्य दर्शन, सोम प्रकाश, अमृत बाजार पत्रिका** जैसी पत्र-पत्रिकाएं नयी चेतना फैला रहीं थीं। प्रफुल्ल के पिता इन सब पत्र-पत्रिकाओं

का मंगाते थे। बालक प्रफुल्ल इनका एक-एक पृष्ठ चाट जाता। प्रफुल्ल ने ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की लिखी **व्याकरण उपक्रमणिका** भी पढ़ डाली और संस्कृत का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त कर लिया।

प्रफुल्ल के बड़े भाई को भी किताबों का बेहद शौक था। कबाड़ी की दूकानें छान डालने में उन्हें बड़ा आनन्द आता था। कबाड़ी की दूकान में लैटिन भाषा सीखने की एक किताब उनके हाथ लग गयी। किताब घर आ गयी और बालक प्रफुल्ल को मिल गयी। उसने पढ़ना शुरू किया। उसे पहेली हल करने जैसा मजा आने लगा। जानते हो क्यों? बात यह थी कि उसने संस्कृत और लैटिन में बड़ी समानता देखी। उदाहरण के लिए ये दो शब्द देखो :

निदुस (लैटिन)	**निदष (संस्कृत)**
डिसेम (लैटिन)	**दशम (संस्कृत)**

अब क्या था। प्रफुल्ल ने धीरे-धीरे लैटिन का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त कर लिया। लैटिन का ज्ञान हो गया तो फ्रांसीसी भाषा सीखने में कितनी देर लगती!

कोई ताज्जुब नहीं कि बीमारी से लौट कर बालक प्रफुल्ल जब स्कूल पहुंचा तो कक्षा में प्रथम आया। ढेर सारी किताबें इनाम में मिलीं : महाकवि शेक्सपीयर

की सारी कृतियां, लेखक यंग की **रात्रिकालीन विचार**। थैकरे की **अंग्रेजी के हास्यकार** जैसी प्रिय पुस्तकें भी प्राप्त हुईं।

साहित्य और विज्ञान—दोनों में बालक प्रफुल्ल को गहरी दिलचस्पी थी। किन्तु मैट्रिक पास करते-करते प्रश्न उठ खड़ा हुआ : इनमें से प्रधानता किसे दी जाय ? सभी विषयों को पढ़ डालने से परीक्षाओं में पास हो जाना तो आसान है, लेकिन इससे 'विशेषज्ञता' नहीं पैदा होती। बालक प्रफुल्ल जानता था कि ज्ञान की किसी एक शाखा में जिन्दगी खपा कर ही महान व्यक्तियों ने सफलता प्राप्त की है।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के मेट्रोपोलिटन इन्स्टीट्यूशन में बालक प्रफुल्ल ने एफ. ए. में नाम लिखाया। यहीं से उसकी जिन्दगी में मोड़ आया। विद्यासागर के कालेज में नाम लिखाने के कई कारण थे। एक तो यह राष्ट्रीय संस्था थी जिसे हर भारतीय अपनी संस्था समझता था। दूसरे यहां फीस कम थी : तीन रुपये।

उन दिनों एफ. ए. में रसायन विज्ञान भी एक जरूरी विषय होता था। विज्ञान के चमत्कारों ने बालक प्रफुल्ल को इतना मोह लिया था कि उसने इसी को अपनाने का फैसला किया।

जैसा कि हम जानते हैं, बालक प्रफुल्ल को कक्षा में पढ़ायी जाने वाली बातों से ही सन्तोष न होता था। इसलिए उसने प्रेसीडेंसी कालेज में 'बाहरी छात्र' के रूप में जाना शुरू कर दिया। इतना ही नहीं, रसायन-विज्ञान की जो भी पुस्तक हाथ लग जाती, बालक प्रफुल्ल उसे पढ़ डालता।

इस बीच पिता की आर्थिक हालत खराब हो गयी। कलकत्ता छोड़कर वह गांव चले गये।

अब प्रफुल्ल कहां रहता ? होस्टल छोड़ दूसरी कौन सी जगह थी ? सो वह होस्टल में ही रहने लगा।

कक्षा में जो वैज्ञानिक प्रयोग होते उन्हें होस्टल के कमरे में एक बार फिर करने में प्रफुल्ल को बड़ा मजा आता। उसने और एक साथी छात्र ने अपने कमरे में छोटी सी प्रयोगशाला कायम कर ली थी।

इन्हीं दिनों एक दिलचस्प घटना घटी।

एक बार दोनों ने एक लुहार की मदद से लोहे की पतली चादर से कुछ नलियां बना लीं। अब उन्होंने आक्सीजन और हाइड्रोजन गैसों के प्रयोग करने की ठानी। ऐसे कच्चे यंत्र को लेकर उन्होंने प्रयोग शुरू किया तो किसी की सांस से आक्सीजन गैस हाइड्रोजन गैस की नली में पहुंच गयी।

जानते हो क्या हुआ ?

धड़-धड़-धड़ाक्-धड़ाक् !!

बड़े जोर का धड़ाका हुआ। खुशकिस्मती से चोट किसी को नहीं आयी।

इन दिनों प्रफुल्ल को अपना साहित्य-प्रेम दबाये रखना पड़ता था। कारण यह कि ज्यादातर समय विज्ञान के अध्ययन में चला जाता था। लैटिन और फ्रांसीसी भाषा का सामान्य ज्ञान तो था ही; संस्कृत एफ० ए० में पढ़ायी जा रही थी। **रघुवंश** के सात सर्ग और **भट्टी काव्यम** के पांच सर्ग पाठ्यक्रम में थे। एक पण्डित की सहायता से प्रफुल्ल ने कालिदास के **कुमारसम्भवम्** के कुछ सर्ग भी पढ़ डाले।

इसी बीच प्रफुल्ल के मन में इच्छा जागी कि गिल-क्राइस्ट वजीफे के इम्तहान में क्यों न बैठा जाय ? इसके दो कारण थे।

पहला : यह इम्तहान लंदन विश्वविद्यालय के मैट्रिक के बराबर माना जाता था। इसके लिए लैटिन, ग्रीक या संस्कृत, और फ्रांसीसी या जर्मन भाषाओं की जानकारी जरूरी थी। इस तरह प्रफुल्ल को खुद अपने ज्ञान की परीक्षा लेने का अवसर मिल रहा था।

दूसरा : अगर यह वजीफा मिल जाता तो इंग-लैंड जाने का दरवाजा खुल जाता।

सो उसने गुपचुप तैयारी शुरू कर दी; सिर्फ बड़े भैया को इसकी जानकारी थी।

फिर भी भेद खुल ही गया; और एक दिन एक सहपाठी ने प्रफुल्ल को चिढ़ाते हुए कहा : तुम्हारा नाम तो लंदन विश्वविद्यालय के गजट में छपेगा !

प्रफुल्ल ने छींटाकशी चुपचाप बर्दाश्त कर ली। पर इससे प्रफुल्ल का संकल्प और भी दृढ़ हो गया।

महीनों बीत गये। परीक्षा फल नहीं आया। प्रफुल्ल ने सारी आशा छोड़ दी। वह कालेज की परीक्षा के लिए पढ़ाई में जुट गया।

एक दिन प्रफुल्ल कालेज पहुंचा तो एक सहपाठी ने शैतानी से हंस कर पूछा : आज का **स्टेट्समैन** पढ़ा ?

प्रफुल्ल के चेहरे का रंग उड़ गया। उसने सोचा शायद दुनिया में कोई बड़ी घटना हो गयी है और समा-चार-पत्र ध्यान से न पढ़ने के कारण वह उसे नजरन्दाज कर गया है; अब मजाक उड़ाया जायगा कि बड़ा पढ़ने वाला और जानकार बनता है।

प्रफुल्ल को खोया-खोया और उदास देख कर मित्र ने उसकी आंखों के सामने **स्टेट्समैन** रख दिया। एक क्षण प्रफुल्ल को उस खबर पर विश्वास ही नहीं हुआ। उसने एक बार पढ़ा, दो बार पढ़ा।...

दोस्त मुस्करा रहा था और कह रहा था : अब खिलाओ मिठाई ।

हां, मिठाई खिलाने की बात ही थी। समाचार छपा था कि गिलक्राइस्ट वजीफे की परीक्षा में दो छात्र उत्तीर्ण हुए हैं। एक पारसी लड़का है। नाम है : बहादुर जी। दूसरा कलकत्ते का एक बंगाली लड़का है। नाम है :

क्या ?

प्रफुल्ल चन्द्र राय !

अब प्रफुल्ल के सपने पूरे होने का समय आया।

प्रफुल्ल ने **स्टेट्समैन** की खबर काट कर गांव रड़ौली भेजी और माता-पिता से विलायत जाने की आज्ञा मांगी। पिता जी आज्ञा दे देंगे, यह तो तय था। किन्तु माता जी ? उन दिनों विलायत हो आने वाले को जात से बाहर निकाल दिया जाता था। लेकिन पिता के विचारों का प्रभाव मां पर भी पड़ चुका था। उनकी तरफ से किसी विरोध का सामना न करना पड़ा।

चार वर्ष का विछोह ! प्रफुल्ल विदा लेने और आशीर्वाद ग्रहण करने मां के सामने पहुंचा तो मां के आंसू देखकर खुद भी रो पड़ा। प्रफुल्ल मां को ढाढ़स

बंधाने लगा : "मां, आशीर्वाद दो कि मैं सफल होऊं। और विश्वास रखो मां, जब मैं लौट कर आऊंगा तो सबसे पहला काम यह करूंगा कि बिकी हुई जमीन फिर खरीद लूंगा और गिरता हुआ मकान फिर बनवा दूंगा।"

उस समय बालक प्रफुल्ल को यह नहीं मालूम था कि जमीन-जायदाद खरीदने के अलावा रुपया और भी किसी काम आ सकता है, दुनिया में रुपये के और भी उपयोग हैं, "सफलता" के कुछ और भी अर्थ हैं !

: तीन :

लंदन !

अनजाना नगर ! अनजाने लोग ! वहां लोग कैसे रहते हैं ? क्या खाते-पीते हैं ? रस्मो-रिवाज क्या हैं ?

प्रफुल्ल ने कलकत्ता के एक होटल के खानसामा को अपना गुरू बनाया । बख्शीश मिली तो खानसामा ने खुशी-खुशी यह सिखा दिया कि छुरी-कांटे से कैसे खाना खाया जाता है । एक 'कोर्स' जब खत्म हो जाय तो छुरी-कांटे को समानान्तर रख देना चाहिए और जब तुम चाहो कि तश्तरी अभी हटायी न जाय तो दोनों का कोण बनाकर रख दो !

सो, खान-पान में प्रफुल्ल चन्द्र को कोई कठिनाई नहीं हुई ।

किन्तु युवक प्रफुल्ल अंग्रेज साहबों की नकल करने तो इंगलैण्ड गया नहीं था । क्या खूब कि भोजों और नाच-घर के लिए खास किस्म की पोशाकें पहनी

जाती थीं ! दुमदार कोट ! कैसा भोंड़ा लगता है । प्रफुल्ल ने इस पोशाक से छुटकारा पाने का फैसला कर लिया । उसने **चोगा** और **चपकन** बनवायी—उसी तरह की जैसी कि राजा राममोहन राय पहना करते थे । इस भारतीय पोशाक में उसे अपने देश का गौरव अनुभव होता था ।

इस समय सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बसु भी लन्दन में अध्ययन कर रहे थे । प्रफुल्ल और जगदीश दोनों में मित्रता बढ़ गयी । एक सप्ताह के अन्दर प्रफुल्ल ने लंदन घूम डाल ।

प्रफुल्ल को अध्ययन के लिए एडिनबरा जाना था । एडिनबरा विश्वविद्यालय उन दिनों विज्ञान की शिक्षा के लिए दुनिया भर में प्रसिद्ध था । यहां अलेक्जेण्डर क्रम ब्राउन जैसे वैज्ञानिक रसायन-विज्ञान के अध्यापक थे; जर्मन विश्वविद्यालयों में पढ़े हुए डा. गिबसन और डा. डोबिन उनके सहायक थे । प्रफुल्ल को जर्मन भाषा सीखने की आवश्यकता महसूस हुई । कुछ ही दिनों में उसने सीख ली । वह जर्मन वैज्ञानिकों की पुस्तकों से भी लाभ उठाने लगा ।

एक अंग्रेज विद्वान और राजनीतिज्ञ लार्ड मैकाले ने भारत में अंग्रेजी ढंग की शिक्षा लागू करने पर जोर

दिया था। उसका खयाल था कि इस तरह सारे भारतीय अंग्रेजों के दिमागी गुलाम बन जायेंगे। उसका यह खयाल किसी कदर सही भी था। उस जमाने में थोड़ी-सी अंग्रेजी पढ़ कर लोग अपने को बड़ा तोसमार-खां समझने लगते थे।

ऐसे जमाने में युवक प्रफुल्ल की परीक्षा की घड़ी आ पहुंची। यह विश्वविद्यालय की परीक्षा न थी। यह परीक्षा थी देश-प्रेम की, ज्ञान की।

बात १८८५ की है।

प्रफुल्ल एडिनबरा विश्वविद्यालय में बी. एस-सी. परीक्षा की तैयारी कर रहे थे। तभी विश्वविद्यालय के प्रधान लार्ड इड्डेसले ने घोषणा की कि **भारत : १८५७ के विद्रोह से पहले और बाद में** विषय पर जो सबसे अच्छा लेख लिखेगा, उसे पुरस्कार दिया जायगा।

इस प्रतियोगिता का उद्देश्य स्पष्ट था। अंग्रेज अधिकारी चाहते थे कि लड़के अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा करें; लिखें कि अंग्रेजी राज्य से पहले भारत पिछड़ा हुआ देश था और अब उन्नति कर रहा है।

प्रफुल्ल यों तो रसायन विज्ञान की पढ़ाई में उलझे हुए थे, पर उनसे न रहा गया। उन्होंने इस विषय को अपने लिए एक चुनौती समझा और प्रतियोगिता में भाग लेने का फैसला कर ही डाला।

लेख लिखना आसान काम नहीं था। इसके लिए भारत के इतिहास, आर्थिक स्थिति और राजनीतिक सिद्धान्तों की जानकारी जरूरी थी।

आखिर उन्होंने लेख लिख डाला। मुख पृष्ठ पर अंग्रेजी में एक सूत्र लिख कर लेख को एक लिफाफे में बंद कर दिया। दूसरे लिफाफे में उस सूत्र वाले लेख के लेखक का नाम-धाम लिख कर बंद कर दिया गया। यह इसलिए करना पड़ता था कि परीक्षक को लेखक का नाम न मालूम होने पाये। बाद में जो लेख सर्वश्रेष्ठ माना जाता, उसके लेखक का नाम दूसरे लिफाफे को खोल कर मालूम कर लिया जाता था।

पुरस्कार एक और लड़के को दिया गया। किन्तु प्रफुल्ल तथा एक अन्य लड़के के लेखों की प्रशंसा की गयी। प्रफुल्ल को इससे निराशा नहीं हुई। वह जानता था कि पुरस्कार उसको नहीं मिलेगा।

बाद में प्रिंसिपल साहब ने अपने भाषण में कहा कि प्रफुल्ल तथा अन्य दो लड़कों के लेख असाधारण रूप से श्रेष्ठ हैं।

तुम पूछोगे : प्रफुल्ल चन्द्र को पुरस्कार क्यों नहीं मिला ?

तो सुनो—

कारण यह था कि परीक्षकों को राय में इस लेख में "ब्रिटिश शासन के विरुद्ध निन्दात्मक बातें" कही गयी थीं। इस लेख में प्रफुल्ल ने लिखा था कि विदेशी शासन भारत के सपूतों की प्रगति को रोक रहा है। उसने साफ लिखा कि, "कोई भी भारतीय जिस घड़ी से होश संभालता है शायद उसी घड़ी से वह अपने आप पर शर्मिन्दा हो उठता है।"

भला ऐसी बातें पढ़कर अंग्रेज उसे कैसे पुरस्कार दे सकते थे ?

प्रफुल्ल ने लेख वापस ले लिया और अपने खर्चे पर पुस्तक के रूप में छपवा दिया। पुस्तक खास तौर से विद्यार्थियों के लिए छपवायी गयी थी। इसलिए प्रफुल्ल ने उसमें "विश्वविद्यालय के छात्रों से अपील" भी जोड़ दी थी।

प्रफुल्ल चन्द्र समझते थे कि अंग्रेज जनता को यदि भारत की सही स्थिति बतायी जाय तो हालत सुधर जायगी। उनका यह भ्रम शीघ्र ही दूर हो गया। बाद में उन्होंने लिखा :

> "दुनिया के इतिहास में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता जिससे यह सिद्ध हो कि कोई स्वामी-

> जाति अपनी इच्छा से गुलाम-जाति को रियायतें देती है।"

खुद इंगलैण्ड के इतिहास से यह बात उनकी समझ में आ गयी। इंगलैण्ड स्वतंत्र देश था और है। किन्तु वहां भी जनता को राजा जॉन से जनवादी अधिकार पाने के लिए लड़ना पड़ा था। यह अधिकार-पत्र "मैग्ना कार्टा" के नाम से प्रसिद्ध है और हर अंग्रेज उस पर गर्व करता है। ब्रिटिश पार्लमेंट और चुनाव-प्रणाली कायम करने के लिए भी ब्रिटिश जनता को महान गृह-युद्ध छेड़ना पड़ा था और अपना खून बहाना पड़ा था।

युवक प्रफुल्ल के जीवन में यह बड़ी महत्वपूर्ण घटना थी। इससे ब्रिटिश शासकों की न्याय-प्रियता के ढोल की पोल खुल गयी। साथ ही प्रफुल्ल के हृदय में देशभक्ति का वह बीज पड़ा जिसने आगे चल कर विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लिया।

बी० एस-सी० की परीक्षा आ गयी और प्रफुल्ल ने इसमें शानदार सफलता प्राप्त की।

अब डाक्टरेट की तैयारी करनी थी। इसके लिए कोई मौलिक खोज करना और उस पर निबंध लिखना जरूरी था। इसलिए राजनीति की बातें छोड़ प्रफुल्ल ने अब सारा समय अंग्रेजी, फ्रांसीसी और जर्मन भाषाओं

की वैज्ञानिक पुस्तकें पढ़ने में लगाया। प्रफुल्ल ने अपने शोध-कार्य का विषय 'कच्ची धातु का विश्लेषण' चुना।

इस परीक्षा में भी वह खरे उतरे और प्रफुल्ल से डाक्टर प्रफुल्ल चन्द्र राय बन गये।

डाक्टर राय को 'होप निधि' का वजीफा मिल गया।

अब एक साल और रहा जा सकता था विलायत में।

प्रफुल्ल ने जिस वर्ष डाक्टर की उपाधि प्राप्त की, उस वर्ष एडिनबरा विश्वविद्यालय में वह अकेले उम्मीदवार थे। इसलिए डाक्टर की उपाधि के बाद प्रफुल्ल का सभी जगह सम्मान बढ़ गया। १८८७-८८ के सत्र में एडिनबरा विश्वविद्यालय की रसायन सोसाइटी ने उन्हें अपना उपाध्यक्ष तक चुन लिया। इसके अध्यक्ष थे प्रोफेसर क्रम ब्राउन जो प्रफुल्ल के अध्यापक थे।

एडिनबरा के अंग्रेज छात्रों ने एक भारतीय को यह सम्मान दिया, इसीसे यह स्पष्ट है कि डाक्टर प्रफुल्ल ने अपनी विद्वता की कैसी धाक जमा ली थी।

: चार :

डाक्टर प्रफुल्ल चन्द्र राय के अब भारत लौटने का समय निकट आ रहा था।

एडिनबरा में डा. प्रफुल्ल के प्राध्यापक प्रोफेसर क्रम ब्राउन ने बढ़िया प्रमाण-पत्र दिया और उनके रसायन विज्ञान के ज्ञान की प्रशंसा की। उन्होंने कई उच्च अधिकारियों के नाम परिचय-पत्र भी लिख दिये। इनमें से एक पत्र लार्ड प्लेफेयर के नाम भी था जो इंगलैंड के प्रमुख नेताओं में से थे और एडिनबरा विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि थे।

विश्वविद्यालय के प्रिंसिपल सर विलियम म्योर ने सर चार्ल्स बर्नार्ड के नाम एक पत्र दिया। सर चार्ल्स पहले बर्मा के गवर्नर रह चुके थे और अब भारत के शासन में सलाह देने वाली सरकारी कमेटी "इंडिया कौंसिल" के सदस्य थे।

सर चार्ल्स उदार और दयालु व्यक्ति थे। कई बार

उन्होंने इंगलैंड में पढ़ने वाले भारतीय छात्रों को आर्थिक सहायता भी दी थी। सर चार्ल्स ने डा. प्रफुल्ल को भोजन पर बुलाया और वायदा किया कि हिन्दुस्तान के शिक्षा-विभाग की प्रथम श्रेणी में उन्हें नौकरी दिलाने की कोशिश करेंगे।

लार्ड प्लेफेयर ने भी उस समय के भारत-मंत्री लार्ड क्रास को पत्र लिख कर डा. प्रफुल्ल की प्रशंसा की।

किन्तु नियम-कानून तो दो-चार भले आदमियों की उदारता से नही बनते। विदेशी शासक अपनी प्रभुता बनाये रखने से कैसे डिग सकते थे ? सभी उच्च पद अंग्रेजों के लिए सुरक्षित थे। दो-चार भारतीय उच्च पद पा भी गये थे तो उन्हें उस पद पर नियुक्त अंग्रेज के बराबर तनखा नहीं दी जाती थी—सिर्फ दो-तिहाई तनखा दी जाती थी।

यदि लार्ड क्रास कहीं पिघल जाते और डा. प्रफुल्ल को उच्च पद पर नियुक्त कर देते तो ब्रिटिश साम्राज्य के पांव तले से जमीन न खिसक जाती ! इसलिए कोई आशा नहीं रह गयी थी।

उधर डा. प्रफुल्ल का पैसा भी खत्म हो रहा था। सर चार्ल्स बर्नार्ड ने इसे जरूर भांप लिया होगा। एक दिन उन्होंने डा. प्रफुल्ल को पकड़ा और अकेले में ले जाकर पूछा : कितने दिन और टिके रह सकते हो ?

डा. प्रफुल्ल क्या जवाब देते। सर चार्ल्स ने उन्हें आर्थिक सहायता देने का प्रयत्न किया। किन्तु स्वाभिमानी प्रफुल्ल ने वह सहायता स्वीकार नहीं की।

डा. प्रफुल्ल इनकार करने को तो कर गये किन्तु उन्होंने घर से निकल कर सड़क पर पांव रखे तो धीरज का बांध टूट गया। उनकी आंखों से आंसू बह निकले। ये आंसू दुख के नहीं, क्रोध और कटुता के थे। उन्होंने तै कर लिया कि कुछ भी हो, अब वह स्वदेश वापस लौट चलेंगे।

तभी आशा की एक और किरण दिखायी दी। डा. प्रफुल्ल के लंदन छोड़ने से एक दिन पहले सर चार्ल्स ने उनको नाश्ते पर बुलाया और अपने बहनोई चार्ल्स एच. टानी से भेंट करायी। श्री टानी उन दिनों कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालेज में प्रिंसिपल थे और छुट्टी पर लंदन आये हुए थे। श्री टानी को डा. प्रफुल्ल से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने बंगाल के शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर के नाम एक पत्र लिख कर दिया जिसमें उन्होंने कहा कि डा. राय जैसा सुयोग्य विद्वान शिक्षा-विभाग के लिए अमूल्य सिद्ध होगा।

गट्ठर भर प्रशंसा-पत्र लेकर डा. राय स्वदेश लौटे। पर एक कहावत है : पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।

एडिनबरा विश्वविद्यालय की रसायन विज्ञान सोसाइटी ने अपना अध्यक्ष चुन कर जिस भारतीय को सम्मान दिया था, जिसके लेखों की प्रशंसा अनेक अंग्रेज विद्वानों और अखबारों ने की थी, सर चार्ल्स बर्नार्ड और लार्ड प्लेफेयर जिसको सम्मान और प्रेम से निमंत्रित करते थे, वही भारतीय जब भारत आया तो कोई अंग्रेज महाप्रभु उससे सीधे मुंह बात करने को तैयार नहीं था !

मातृभूमि का स्पर्श करते ही डा. राय ने सबसे पहला काम जो किया वह यह कि मनहूस विलायती पोशाक उतार फेंकी। उस दिन उन्होंने एक दोस्त से धोती-चादर मांग कर पहनी और मन ही मन स्वदेशी रहन-सहन का व्रत लिया।

ठीक छः वर्ष बाद स्वदेश के दर्शन हुए थे। माता-पिता के दर्शनों के बिना कैसे रहा जा सकता था। दो-एक दिन कलकत्ता ठहर कर वह सीधे गांव पहुंचे। मां तो देखते ही फूट-फूट कर रो पड़ी। पुत्र का प्रेम ही ऐसा होता है। पर ये खुशी के नहीं, दुख के आंसू थे, क्योंकि इस बीच डा. राय की छोटी बहन की मृत्यु हो गयी थी। डा. राय की पढ़ाई में बाधा न पहुंचे, इसलिए माता-पिता ने यह समाचार उन्हें नहीं

दिया था। पढ़ाई के पीछे माता-पिता ने कितना त्याग किया, यह देख डा. राय का हृदय श्रद्धा से भर गया।

लगभग एक वर्ष डा. राय बेकार रहे—अगस्त १८८८ से जून १८८९ तक। इन दिनों उन्हें कलकत्ता में डा. जगदीश चन्द्र बसु के घर में आश्रय मिला। डा. बसु लगभग तीन वर्ष पहले कैम्ब्रिज और लंदन विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करके लौटे थे। उन्हें भी अपनी मातृभूमि में उच्च पद पाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था।

प्रयोगशाला के बिना वैज्ञानिक का जीवन व्यर्थ होता है। बेकारी के दिनों में डा. राय भी अपने को शक्तिहीन अनुभव करते थे। फिर भी डा. बसु के घर रह कर उन्होंने रसायन विज्ञान की पुस्तकें पढ़ना जारी रखा। वनस्पति विज्ञान में भी उन्हें बेहद दिलचस्पी थी। इसलिए फालतू समय काटने के लिए वह कलकत्ता के आसपास के क्षेत्र में चक्कर लगाते रहते और अनेक प्रकार के पौधों के नमूने जमा करते रहते।

और, एक दिन सरकारी परवाना आ गया। उन्हें कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालेज में २५० रु. मासिक वेतन पर रसायन विज्ञान का अस्थायी प्रोफेसर नियुक्त किया गया था। उस जमाने में अंग्रेज सरकार किसी भारतीय

को इससे अधिक तनखा देने के पक्ष में नहीं थी। भारतीय आखिर गुलाम थे न !

परवाना पढ़ कर डा. राय को धक्का-सा लगा। वह सीधे दार्जिलिंग गये और शिक्षा विभाग के डाय-रेक्टर श्री क्रोफ्ट से इस अन्याय की शिकायत की। उन्होंने क्रोफ्ट से कहा कि अगर इस पद के लिए इंगलैंड से कोई अंग्रेज लाया जाता तो अंग्रेज सरकार प्रथम श्रेणी की "इम्पीरियल सर्विस" (आई. सी. एस.) में उसकी नियुक्ति करती; आने-जाने का खर्चा ऊपर से देती। फिर उनके साथ ऐसा अन्याय क्यों ?

श्री क्रोफ्ट आग-बबूला हो उठे और गरज कर बोले : "तुम्हारे लिए जिंदगी के और भी रास्ते खुले हुए हैं। तुम यही नौकरी करो, इसके लिए तुम्हें कोई मजबूर तो नहीं कर रहा !"

अपमान पर अपमान।

डा. राय अपमान का घूंट पीकर रह गये। मजबूरी थी। प्रयोगशाला के बिना एक वैज्ञानिक की जिन्दगी बेकार है। नौकरी से कम से कम इतना लाभ तो था कि प्रेसीडेंसी कालेज में एक बढ़िया लेबो-रेटरी उनके हाथ लग जाती।

अस्तु डा. राय ने प्रेसीडेंसी कालेज में काम करने का फैसला कर लिया !

: पांच :

मिल गयी ! मिल गयी !! मिल गयी !!!

बड़ी देर तक ढूंढ़ने के बाद, कठिन परिश्रम के बाद, जब कोई वस्तु मिल जाती है, तो कितनी खुशी होती है !

लेकिन यह खोज तो ऐसी चीज की हुई जिसे हम जानते हैं, लेकिन खो बैठे थे।

अब अगर ऐसी चीज मिल जाय जिसकी कल्पना भी न की हो, तो सोचो कितनी खुशी होगी ! वैज्ञानिक की खोज या आविष्कार में कुछ ऐसा ही मजा होता है।

एक वैज्ञानिक ने कहा है, "खोज से जो आनन्द मिलता है, उस तरह का आनन्द और कोई नहीं है। उससे हृदय आनन्द-मग्न हो उठता है।"

बिजली, तार, रेडियो, आदि के आविष्कारों ने हमारी जिंदगी ही बदल दी है। ये सब विज्ञान के मौलिक आविष्कार हैं। रसायन विज्ञान की खोजों में

महत्वपूर्ण हैं तमाम तरह की दवाएं, जिनसे न जाने कितने रोगों और कष्टों पर मनुष्य ने विजय प्राप्त की है।

डा. राय रसायन विज्ञान के आचार्य थे। एक दिन वह अपनी प्रयोगशाला में पारे और तेजाब से प्रयोग कर रहे थे। इससे मरक्यूरस नाइट्रेट नामक पदार्थ बनता है। तभी उन्हें कुछ पीले-पीले कण दिखायी दिये।

यह क्या ?

उन्होंने परीक्षा की तो पता चला कि यह वस्तु लवण भी है और नाइट्रेट भी। रसायन शास्त्रियों को अब तक इस पदार्थ का पता न था, न उसके गुण मालूम थे।

आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय की इस खोज का समाचार अखबारों में छपा तो देश-विदेश के वैज्ञानिकों ने उन्हें बधाई और अभिनन्दन के संदेश भेजे। दुनिया समझ गयी कि रसायन-विज्ञान के क्षेत्र में भारत पीछे नहीं रहेगा।

सचमुच १८९५ का साल देश के लिए बड़ा सौभाग्यपूर्ण था। इस साल डा. जगदीश चन्द्र बसु ने विद्युत किरणों पर एक खोज कर भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में

सिक्का जमाया, तो डा. राय ने नाइट्रेट की खोज करके रसायन शास्त्रियों को आश्चर्य-चकित कर दिया।

एक कहावत है : आवश्यकता आविष्कारों की जननी है।

तुम पूछोगे : आवश्यकता क्या बला है ?
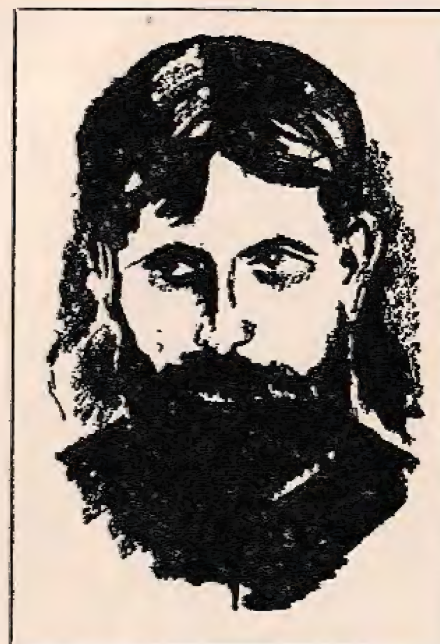
युवक प्रफुल्ल चन्द्र

आवश्यकता से मतलब है मनुष्य की जरूरतों से, मानव समाज की जरूरतों से। मनुष्य को जंगली पशुओं और मौसम से अपनी रक्षा की आवश्यकता थी, इसलिए

उसने मकान बनाने का आविष्कार किया; पेट भरने की आवश्यकता थी, सो उसने भोजन की चीजों की खोज करते-करते खेती का आविष्कार किया; बदन ढकने के लिए पत्तियों और जानवरों की खालें पहनते-पहनते उसने सूती और ऊनी कपड़ों का आविष्कार किया, आदि-आदि।

मनुष्य ने हजारों वर्ष पहले रंगीन पत्थरों को कूट-पीस कर रंग बनाना, साबुन जैसी चीजें बनाना, एक खास तरह की बालू से काँच बनाना, धातुएं निकालना आदि सीखा। धीरे-धीरे उसने इनके नियमों को समझना शुरू किया और यह क्रिया एक विज्ञान बन गयी।

डा. राय जब एडिनबरा में थे, तब उन्होंने इंगलैंड के बहुत से कारखाने देखे थे। इन कारखानों में रसायनिक चीजें बनती थीं जो बाजार में बिकती थीं। इन चीजों को और अच्छा कैसे बनाया जाय? उनके बनाने की रीति सरल और सस्ती कैसे हो? इन समस्याओं को हल करने के लिए इन कारखानों में और विश्वविद्यालयों में रसायन-शास्त्री जुटे रहते थे।

डा. राय ने देखा कि कल-कारखानों, उद्योग-धंधों और रसायन-विद्या का गहरा सम्बंध है। उद्योग-धंधे बढ़ते हैं तो रसायन विद्या बढ़ती है और रसायन-विद्या बढ़ती है तो उद्योग-धंधे बढ़ते हैं।

प्रेसीडेंसी कालेज में रसायन-विज्ञान पढ़ा रहे हों या प्रयोगशाला में काम कर रहे हों—डा. राय के मस्तिष्क में ये ही विचार चक्कर काटते रहते। रसायनिक पदार्थों को बनाने के लिए देश में अपार प्राकृतिक वस्तुएं हैं—हजारों किस्म के पेड़-पौधे हैं, जड़ी बूटियां हैं, मिट्टी-पत्थर हैं। जरूरत थी एक ऐसे वैज्ञानिक की जो इनका भेद समझ सके और इनकी उपयोगिता को खोज निकाले।

डा. राय यह देख कर दुखी थे कि बंगाली नौजवान विश्वविद्यालय की डिग्रियां लेकर नौकरी की तलाश में दर-दर भटकते फिरते हैं। व्यापार और उद्योग-धंधों की तरफ उनका ध्यान बिलकुल नहीं जाता। व्यापार कुछ था भी तो वह कम पढ़े-लिखे मारवाड़ियों या दूसरे लोगों के हाथ में था। उद्योग-धंधों की तरफ उनका भी ध्यान नहीं था।

डा. राय ने सोचा—चलो, कुछ चीजें खुद बनायी जायें। उन्होंने व्यापारियों से भी बातें कीं। पता चला: विलायती कम्पनियों की चीजें तो लोग खुशी-खुशी खरीद लेते हैं, किन्तु देशी चीजों पर उन्हें विश्वास नहीं होता। अस्तु, डा. राय ने इस बाधा को दूर करने का संकल्प कर लिया। उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन चलाने का फैसला किया।

स्वदेशी आन्दोलन देशभक्ति का आन्दोलन था। इससे देश में उद्योग-धंधे बढ़ाने में मदद मिलती है। जैसा हम पहले कह चुके हैं, उद्योग-धंधे बढ़ते हैं तो विज्ञान की नयी-नयी खोजें होना आसान हो जाता है। विदेशी चीजें खरीदने से देश का जो पैसा विदेश चला जाता है, उसको स्वदेशी चीजें खरीद कर रोका जा सकता है। यही कारण है कि अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ राष्ट्रीय आन्दोलन में हर देशभक्त का नारा था : विदेशी माल का बायकाट करो! स्वदेशी चीजें इस्तेमाल करो!

डा. राय ने ऐसी चीजें तैयार करने का फैसला किया जिनकी मांग काफी होती है और बाजार में जिनकी बिक्री जल्द हो सकती है। उन्होंने ऐसी रसायनिक चीजें बनाने का निश्चय किया जो दवाओं के काम आ सकें।

मगर इसमें भी एक दिक्कत थी।

कौन सी दिक्कत ?

सुनो :

विश्वविद्यालय में यह तो पढ़ाया जाता है कि विभिन्न वस्तुओं से रसायनिक तत्व कैसे बनाये जाते हैं, किन्तु उनको बड़े पैमाने पर बनाने की क्रिया नहीं बताई जाती। इंगलैंड में डा. राय ने जितने कारखने देखे,

उनमें दवाइयां बनाने के कारखानों में उनको निर्माण का तरीका नहीं देखने दिया गया। यही रहस्य की चीज थी। इस रहस्य को एक अंग्रेज कारखानेदार दूसरे अंग्रेज को भी नहीं बताता था, फिर वे एक भारतीय को कैसे बता देते ?

क्या इसका मतलब यह हुआ कि डा. राय को निर्माण-विधि भी अपने आप खोज निकालनी थी ?

हां !

अच्छे काम में साथी भी जल्द ही मिल जाते हैं। डा. राय को अपने कुछ मित्रों से सहायता मिली। कुछ बंगाली व्यापारियों ने भी मदद की।

दवाएं बनाने के लिए कच्चा माल (वे चीजें जिनसे दवाएं बनायी जाती हैं) हमारे देश में बहुत हैं। अंग्रेज व्यापारी यहां से कच्चा माल विलायत ले जाते थे और वहां से दवाएं बनाकर मंहगी कीमत पर हमारे देश में भेज देते थे। इस तरह वे भारी मुनाफा कमाते थे।

उदाहरण के लिए, जानवरों की हड्डियां बड़े पैमाने पर इंगलैंड भेजी जाती थीं। इनसे "सुपर फास्फेट आफ लाइम" नामक दवा बनती है, जो अनेक मर्जों के इलाज में काम आती है।

इस सिलसिले में डा. राय के साथ एक बड़ी मजेदार घटना घटी।

सुना दूं तुम्हें ?

अच्छा सुनो : उन्होंने कई बोरे हड्डियां खरीदीं और अपने मकान की छत पर सुखाने के लिए बिखेर दीं। जनवरी का महीना। दुर्भाग्य की बात कि एक दिन खूब पानी बरसा। हड्डियों में थोड़ा-बहुत मांस चिपका रह गया था। सो, भीग जाने के कारण उनसे बड़ी दुर्गंध उठी। चील-कौओं ने अलग धावा बोल दिया। पड़ोस के घरों में हड्डियां गिराने लगे।

मुहल्ला था हिन्दुओं का। सारे मुहल्ले में हाहाकार मच गया। मुहल्ले वालों ने आकर मांग की कि हमारा धर्म न बिगाड़ा जाय। कुछ लोग धमकी भी दे गये कि अगर हड्डियां तुरन्त न हटायी गयीं तो स्वास्थ्य अधिकारी से शिकायत कर दी जायगी। डा. राय संकट में फंस गये।

सौभाग्य से डा. राय के एक परिचित ने आकर उनको संकट से छुड़ाया। इस व्यक्ति के पास बस्ती से दूर मानिकटोला में कुछ जमीन थी जो खाली पड़ी थी। सारी हड्डियां बैलगाड़ी पर लाद कर वहां पहुंचा दी गयीं।

दवा बनाने से पहले हड्डियों को जलाना होता है। इसके लिए ईंटों का भट्ठा तैयार किया गया। शाम को

आग लगा दी गयी। आधी रात होते-होते धू-धू करके लपटें उठने लगीं। पुलिस की नजर पड़ी तो उनका एक अधिकारी दौड़ा आया। उसने सोचा कि दाल में कुछ काला है। वह पूछताछ करने लगा : "इहां क्या लहाश जलाता है ?" उसे शंका हुई कि किसी की हत्या करके लाश जलायी जा रही है। उसका भ्रम दूर करने के लिए एक बांस से आग खुरेदी गयी और हड्डियां दिखायी गयीं। तब जाकर जान बची। वरना वह पकड़ कर थाने ले जाता।

हम तुम्हें बता चुके हैं कि हड्डियों को जलाने के बाद जो रसायनिक तत्व बनता है, वह 'फासफेट आफ कैल्शियम' कहलाता है और उसकी सारी अपवित्रता नष्ट हो जाती है। विद्यार्थियों को पढ़ाते समय डा. राय इसके कुछ नमूने मेज पर रख लेते थे और विद्यार्थियों को बताया करते थे कि किस तरह रसायनिक परिवर्तन से एक वस्तु बिल्कुल दूसरी वस्तु बन जाती है। वह बताया करते थे कि 'फास्फेट आफ कैल्शियम' दिमागी ताकत बढ़ाता है। अक्सर वह इसका एक टुकड़ा मुंह में रख लेते और चबा कर डकार जाते। वह अपने छात्रों को भी थोड़ा सा चखने का निमंत्रण देते। कुछ छात्र तो सहर्ष खा लेते, पर दूसरे कुछ छात्र धर्म टूटने के भय से उसे छूते तक न थे।

डा. राय ने इस प्रकार न जाने कितने रसायनिक पदार्थ और द्रव तैयार किये। ये रसायन किसी भी विदेशी रसायन से टक्कर ले सकते थे। इसलिए उनकी मांग भी बढ़ने लगी। डा. राय ने अपने घर पर जो छोटा सा 'कारखाना' बनाया था, वह धीरे-धीरे फलने-फूलने लगा। आगे चल कर उसके लिए अलग और बड़ी जगह की जरूरत पड़ी। बाद में यह कारखाना एक बड़ा भारी कारखाना बन गया जो **बंगाल कैमिकल्स एंड फार्मेस्युटिकल वर्क्स** के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

डा. राय वैज्ञानिक ही नहीं थे। वह स्वदेशी उद्योग-धंधों के संस्थापक भी थे। सोदेपुर में गंधक के तेजाब का कारखाना, कलकत्ता पाटरी वर्क्स नामक चीनी मिट्टी के बरतन बनाने का कारखाना (जिसका बीज १९०१ में पड़ा), बंगाल एनेमल वर्क्स नामक तामचीनी की चीजें बनाने का कारखाना (१९२१ में स्थापित), और बंगीय स्टीम नैविगेशन कम्पनी नामक जहाजरानी की कम्पनी (१९०५) आदि की स्थापना और संचालन में डा. राय की भूमिका चिर-स्मरणीय रहेगी। इन सभी उद्योगों के विकास में विदेशी ब्रिटिश सरकार की तरफ से तमाम तरह की बाधाएं खड़ी की गयीं, किन्तु देश-सेवा और स्वदेश-प्रेम की भावना के बल पर डा. राय ने ये रुकावटें चकनाचूर कर दीं।

: छ :

वैद्यराज जी से मिलिए! उनके नुस्खे में कोई भस्म या कोई रस लिखा होगा। ये रस और भस्में क्या हैं? ये जंगली पेड़-पौधे, जड़ी-बूटियां या घोंघा-सीप आदि हैं। कई धातुओं से भी भस्में तैयार की जाती हैं—जैसे लौह-भस्म या स्वर्ण-भस्म। जड़ी-बूटियों या धातुओं के ये रूप-परिवर्तन भी रसायनिक परिवर्तन हैं।

डा. राय ने इस विषय पर एक बंगाली लेखक उदयचन्द्र दत्त की पुस्तक पढ़ी। मन में उत्सुकता जागी। मूल संस्कृत में वे पुस्तकें पढ़ डालीं जिनको पढ़कर श्री उदयचन्द्र ने वह पुस्तक लिखी थी। डा. राय यह देख कर अवाक् रह गये कि भारत में प्राचीन काल से ही रसायनिक परिवर्तनों का ज्ञान मौजूद है।

इसी काल में डा. राय ने फ्रांस के महान रसायन-वैज्ञानिक एम. बर्थोले से पत्र-व्यवहार किया। बर्थोले ने तीन खण्डों में एक बड़ी पुस्तक लिखी थी। इसमें

सीरिया और अरब के रसायन-ज्ञान की चर्चा है। भारत के रसायन-ज्ञान के बारे में लेखक ने उसमें बहुत कम लिखा था। बर्थोले ने डा. राय से कहा कि १२वीं और १३वीं शताब्दी में भारतीय रसायन विद्या कहां तक पहुंची थी, इसका ब्यौरा लिखें।

डा. राय का देशाभिमान जाग उठा। एक तरफ बर्थोले थे, जो कब्र में एक पांव लटकाये बैठे थे, पर दुनिया भर के रसायन-ज्ञान को जुटाने में लगे थे। दूसरी तरफ हम भारतीय हैं जिन्हें अपने ज्ञान की कोई खबर तक नहीं।

डा. राय ने भारतीय रसायन-विज्ञान को दुनिया में उजागर करने का निर्णय किया। डा. राय ने बर्थोले के पास एक लेख भेजा। बर्थोले ने फ्रांस के वैज्ञानिकों की पत्रिका में लेख लिख कर डा. राय की विद्वत्ता की सराहना की। डा. राय का उत्साह बढ़ा।

अंत में उन्होंने "हिन्दू रसायन विज्ञान का इतिहास" नामक पुस्तक अंग्रेजी में लिख डाली।

इस पुस्तक की दुनिया भर में प्रशंसा हुई और वैज्ञानिक बर्थोले ने फ्रांस की विज्ञान पत्रिका में १५ पृष्ठों का लेख लिख कर डा. राय को धन्यवाद दिया। सचमुच डा. राय ने प्राचीनतम भारतीय सभ्यता की

देन को दुनिया के सामने रख कर ज्ञान के भंडार में अपार वृद्धि की।

डा. राय ने यह पुस्तक लिख कर विश्व में भारत का मस्तक ऊंचा किया। दुनिया को ज्ञात हो गया कि भारत ने साहित्य, संगीत, गणित, ज्योतिष आदि में ही नहीं, रसायन-विद्या में भी काफी उन्नति की थी।

दूसरे, इससे नवयुवक रसायन-शास्त्रियों को भारतीय रसायन-विद्या को और उन्नत बनाने का उत्साह मिला।

डा. राय की देखरेख में और उनकी सहायता से अनेक युवक वैज्ञानिकों ने रसायन-शास्त्र में नयी-नयी खोजें कीं। उनके लेख विदेशों की वैज्ञानिक पत्रिकाओं में छपने लगे। धीरे-धीरे दुनिया में भारतीय वैज्ञानिकों को सम्मान मिलने लगा।

डा. राय के अनेक शिष्य हिन्दुस्तान के दूसरे विश्वविद्यालयों में प्रोफेसर हो गये और देश में रसायन-विज्ञान का विकास होने लगा।

इन शिष्यों में जितेन्द्रनाथ रक्षित, ज्ञानेन्द्र चन्द्र घोष, नीलरतन धर, मेघनाद साहा आदि अनेक विद्वान आगे आये और विश्व में नाम कमाया। इस तरह डा. राय आधुनिक भारतीय रसायन-विज्ञान के जन्मदाता

समझे जाते हैं। फ्रांस के प्रसिद्ध वैज्ञानिक सिलवां लेवी ने ठीक ही लिखा था : "उनकी (डा. राय की) रसा-

यनशाला ऐसा बाल-मंदिर है जहाँ नये भारत के नये रसा-यन-शास्त्रियों का जन्म होता है।"
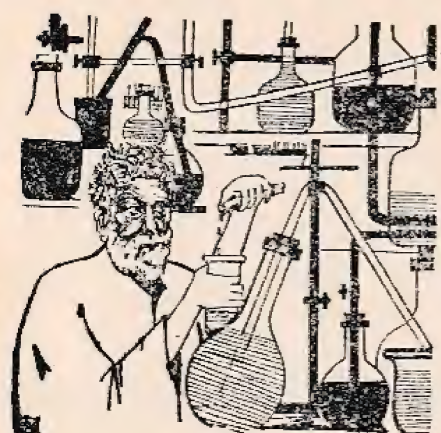
१९१२ में ब्रिटिश साम्राज्य के तमाम विश्व-विद्यालयों का पहला सम्मेलन हुआ। इस कलकत्ता विश्वविद्यालय की ओर से डा. राय और प्रोफेसर देव प्रसाद सर्वाधिकारी को चुना गया। डा. राय ने इस सम्मेलन में बड़े गर्व के साथ भारतीय विद्यार्थियों की सफलताओं की चर्चा की और मांग की कि ब्रिटिश विश्वविद्यालयों में भारतीय कालेजों के विद्यार्थियों का उचित सम्मान किया जाय। उन्होंने कहा कि भारतीय विद्यार्थियों को केवल इसलिए तुच्छ न समझा जाय कि वे एक उपनिवेश के छात्र हैं।

डा. राय के भाषण का अंग्रेज वैज्ञानिकों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। सम्मेलन के बाद अनेक ब्रिटिश

विश्वविद्यालयों ने डा. राय और सर्वाधिकारी को अपने यहां निमंत्रित किया और उनको सम्मान दिया।

फिर भी अंग्रेज शासक भारतीय विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक शिक्षा और खोज के लिए उचित सहायता देने को तैयार नहीं थे। सर आशुतोष मुखर्जी उस समय कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे। वह बड़े पैमाने पर विज्ञान की शिक्षा की व्यवस्था करना चाहते थे। किन्तु अंग्रेज सरकार से कोई सहायता नहीं मिल रही थी।

कलकत्ता विश्वविद्यालय से अंग्रेज हाकिमों की नाराजगी का एक कारण भी था। कारण यह था कि उससे सम्बंधित सिराजगंज हाई स्कूल के छात्रों ने "वन्देमातरम्" का राष्ट्रीय नारा लगाना शुरू कर दिया था। भला यह अंग्रेज अधिकारियों को कैसे सुहाता? ये अधिकारी चाहते थे कि विश्वविद्यालय इस स्कूल की मान्यता छीन ले। कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रबंध-समिति ने ऐसा करने से इनकार कर दिया। अंग्रेजों ने गुस्सा उतारा आर्थिक सहायता में कटौती करके।

इन कठिनाइयों के बावजूद कलकत्ता विश्व-विद्यालय ने देश को सबसे अच्छे वैज्ञानिक दिये। कारण यह कि यहां डा. राय जैसे लगनशील अध्यापक मौजूद थे।

१९१२ में ब्रिटिश विश्वविद्यालयों के सम्मेलन से डा. राय वापस लौटे। उनके सम्मान में प्रेसीडेंसी कालेज में एक भोज दिया गया। इस अवसर पर कालेज के प्रिंसिपल मि. जेम्स ने भाषण देते हुए डा. राय की चार विशेषताएं बतायीं :

१. "पहली बात है डा. राय की रसायनिक खोजें—ये ऐसी मौलिक खोजें हैं, जिनके बल पर डा. राय ने रसायन शास्त्रियों में सम्मानपूर्ण स्थान बना लिया है।"

२. "फिर, हिन्दू रसायन विज्ञान के इतिहास पर उनकी कृति है जो अपने विषय का आदर्श ग्रन्थ है और जिससे विज्ञान व साहित्य जगत को यह पता लग गया है कि रसायन विज्ञान के क्षेत्र में प्राचीन भारत ने ठीक कितनी और कैसी-कैसी सफलताएं प्राप्त कर ली थीं।"

३. "उनकी एक और सफलता जिसे हर व्यक्ति को विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिए यह है कि उन्होंने बंगाल कैमिकल एंड फार्मेस्युटिकल वर्क्स को स्थापित किया जो महत्वपूर्ण और सफल उद्योग है। सभी मानते हैं कि सारे भारत के लिए, और विशेषकर बंगाल के लिए, आज की सबसे

बड़ी आवश्यकता है औद्योगिक विकास। डा. राय व्यापारी नहीं हैं, वैज्ञानिक हैं; किन्तु जहां व्यापारी असफल हुए, वहां एक सचमुच सफल उद्योग कायम करने में उन्होंने (डा. राय ने) सहायता की।"

४. "उनकी एक और सफलता है जिसे मैं सबसे बड़ी सफलता मानता हूँ : डा. राय अपनी प्रयोगशाला में ऐसे युवक रसायन-शास्त्रियों को तैयार कर रहे हैं जो उनके द्वारा आरम्भ किये गये कार्य को आगे बढ़ायेंगे।"

कालेज का एक साधारण सा प्राध्यापक ! दुबला-पतला ! सदा रोग का शिकार ! अंग्रेज सरकार से कोई प्रोत्साहन नहीं ! कदम-कदम पर बाधाएं ! रुपये-पैसे की तंगी ! फिर डा. राय इतने काम कैसे कर सके ? वह कौन सी शक्ति थी जो उन्हें इतने काम करने की प्रेरणा देती रही ?

यह शक्ति थी : देश-प्रेम।

: सात :

अंग्रेजी राज्य के अन्याय को डा. राय अपने जीवन में भुगत चुके थे। भुगतने वालों की संख्या तो बहुत थी, किन्तु उसके खिलाफ लड़ने वाले लोग थोड़े से ही थे। डा. राय सरकारी कालेज में प्राध्यापक थे, पर उन्होंने अंग्रेजों के अन्याय के खिलाफ लड़ने वालों से सहयोग करने में कोई हिचक नहीं दिखायी।

१९०१ में एक बार प्रोफेसर गोपाल कृष्ण गोखले कलकत्ता आये। उनसे डा. राय की भेंट हुई। गोखले उस समय बम्बई के एक कालेज में अध्यापक थे। दोनों में मित्रता होते देर न लगी। दोनों अध्यापक तो थे ही। दोनों एक ही विचार से प्रेरित भी थे—दोनों अंग्रेजी शासन के अन्याय को समाप्त करना चाहते थे।

एक बार का जिक्र है :

१९१२ में डा. राय और गोखले एक ही जहाज से इंगलैंड जा रहे थे।

एक दिन सुबह नाश्ते के समय एक अंग्रेज व्यापारी भी उनके निकट आ बैठा। बातचीत भारत सरकार की शिक्षा-नीति पर चल रही थी। डा. राय और गोखले ने भारत सरकार की कटु आलोचना की। अंग्रेज बरस पड़ा : "क्या बोलटा ? क्या हम लोग शीक्षा पर ज्यादा खर्च नई करटा ?"

डा. राय ने पहली बार गोखले को आग-बबूला होते देखा। गोखले ने चिल्ला कर कहा : "हम लोग से आपका क्या मतलब है ? क्या मैं यह समझूं कि इंगलैंड चन्दा करके रुपया जमा करता है और भारत में शिक्षा पर खर्च करके दान-पुण्य करता है ?"

बेचारे अंग्रेज व्यापारी को क्या मालूम था कि उसका कैसे भारतीयों से पाला पड़ा है। गोखले जीवन-पर्यन्त डा. राय के मित्र रहे।

१९०१ के अन्त में गोखले के साथ एक और महान व्यक्ति कलकत्ते आया था। जरा सोचो : कौन था यह व्यक्ति ? यह व्यक्ति था—मोहनदास करमचन्द गांधी।

गोखले ने गांधी जी को डा. राय से मिलाया। रहन-सहन और खान-पान में सादगी डा. राय अपने जीवन का आदर्श बना चुके थे। गांधी जी में यही बात देखी तो वह बड़े प्रभावित हुए। गांधी जी भी

डा. राय से बहुत प्रभावित हुए। इस मुलाकात की चर्चा गांधी जी ने अपनी **आत्मकथा** में भी की है।

गांधी जी उस समय दक्षिण अफ्रीका से लौटे थे। अफ्रीका में अंग्रेज-शासक भारतीयों के साथ गुलामों जैसा व्यवहार करते थे। डा. राय ने सोचा, यह विवरण कलकत्ता की जनता को मालूम होना चाहिए। उन्होंने एक सभा करने का फैसला किया।

कलकत्ते में १९ जनवरी, १९०२ को गांधी जी की पहली सभा कराने का श्रेय डा. राय को है।

डा. राय कहा करते थे कि आदर्श बघारने से बड़ी चीज यह बात है कि उस आदर्श पर चला जाय। स्वयं वह इसका पालन करते थे। गांधी जी इस आदर्श के सजीव रूप थे। इसलिए, दोनों में अभिन्न सम्बन्ध स्थापित होते देर न लगी।

डा. राय राजनीतिज्ञ नहीं बनना चाहते थे। पर देश की पुकार ने उन्हें दूर न रहने दिया। उन्हें यूनानी दार्शनिक प्लेटो का यह कथन रह-रह कर याद आता था : नागरिक जीवन और राजनीति में अच्छे लोगों के भाग न लेने की सजा यह है कि बुरे लोगों का शासन उन्हें भोगना पड़ता है।

डा. राय ने अपने वैज्ञानिक ज्ञान को रचनात्मक

ढंग से लागू किया। उन्होंने आविष्कार किये, भारतीय रसायन ज्ञान की खोज की, रसायनिक उद्योग कायम किये। दूसरी ओर, देश को जगाने में भी तन-मन-धन से उन्होंने काम किया।

१९२१ से १९२६ तक उन्होंने देश के कोने-कोने का दौरा किया और राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना करके खद्दर और छुआछूत उन्मूलन पर भाषण देकर नवयुवकों में नयी चेतना फूंकी। तमाम राजनीतिक नेता उस समय जेल में डाल दिये गये थे। ऐसी स्थिति में खुलना, दिनाजपुर, कटक जैसी कितनी ही जगहों पर उन्होंने राजनीतिक सम्मेलनों का सभापतित्व किया।

असहयोग आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। डा. राय ने घोषणा की : **"विज्ञान प्रतीक्षा कर सकता है, स्वराज नहीं।"**

फरवरी १९१९। देशबंधु चित्तरंजन दास एक सभा में भाषण करने वाले थे। सारे देश में उस समय क्रोध की लहर उमड़ पड़ी थी। अंग्रेज शासकों ने वादा किया था कि पहले विश्व-युद्ध में सहायता की एवज में भारत को स्वराज्य दिया जायगा। किन्तु युद्ध रुकते ही अंग्रेज अपने वादे से मुकर गये। इतना ही नहीं, जनता को दबाने के लिए उन्होंने रॉलेट एक्ट

लागू किया। इस कानून के अनुसार कोई भी व्यक्ति गिरफ्तार किया जा सकता था। मुकदमा चलाये बिना चाहे जितने समय तक उसे जेल में रखा जा सकता था। चितरंजन दास की सभा इसी के विरोध में हो रही थी।

अपार भीड़ में पीछे कहीं डा. राय भी खड़े हो गये। लोगों ने उन्हें पहचान लिया। अब क्या था! लोग ठेल कर उन्हें मंच पर ले गये। श्री दास ने अपने प्रस्ताव के समर्थन में डा. राय से भाषण देने का अनुरोध किया। 'वंदेमातरम्' के गगनभेदी नारों के साथ जनता ने डा. राय का स्वागत किया।

डा. राय ने क्या कहा?

उन्होंने कहा :

"मैं रसायनशाला का जीव हूं, मगर ऐसे भी मौके आते हैं, जब वक्त का तकाजा होता है कि टेस्ट ट्यूब छोड़ कर देश की पुकार सुनी जाय।"

यह बात आज भी उतनी ही सच है, जितनी उस समय थी। हर प्रबुद्ध वैज्ञानिक के लिए डा. राय यह गम्भीर मंत्र दे गये हैं।

सन् १९२१ में चितरंजन दास को अंग्रेज सरकार

ने जेल में डाल दिया। उस समय उनकी पत्नी को ढाढ़स बंधाते हुए डा. राय ने जो पत्र लिखा था, वह सभी अखबारों में छपा था। उस पत्र में उन्होंने (१४ दिसम्बर, १९२१) लिखा था :

"आप हंसते-हंसते, वीरतापूर्वक यातना सहन कर रही हैं और आधुनिक बंगाल तथा स्त्री जाति के लिए ऐसा आदर्श उपस्थित कर रही हैं जैसा राजपूती गौरव के युग के बाद बहुत कम देखने को मिलता है।"

इस पत्र में उन्होंने आशा प्रकट की कि मातृभूमि के ऊपर संकट के जो काले बादल घिर आये हैं, वे एक दिन जरूर छंट जायेंगे। इस पत्र का महत्वपूर्ण अंश वह है जहां डा. राय ने अपना संकल्प प्रकट किया है। उन्होंने लिखा :

"पर बहन, मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि अपने प्रिय विज्ञान की सेवा करते हुए, मेरे दिमाग में एक ही विचार रहता है और वह यह कि उसके द्वारा मैं देश की सेवा कर सकूं। हमारी आकांक्षाएं एक ही हैं। भगवान जानता है, जीवन में मेरा कोई दूसरा उद्देश्य नहीं।"

१९२५ में कोकोनाडा में राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। डा. राय अधिवेशन में उपस्थित थे। उन्हें "सम्मानित अतिथि" का कार्ड दिया गया, पर बैठाया गया कांग्रेस अध्यक्ष श्री मोहम्मद अली के बगल में। दूसरे दिन नमाज के समय अध्यक्ष को आसन छोड़ कर जाना था। साधारणतया ऐसी हालत में स्वागत-समिति के अध्यक्ष को वह आसन संभालना चाहिए। किन्तु मोहम्मद अली ने डा. राय के रहते किसी को इस सम्मान के योग्य न समझा। उन्होंने डा. राय को बुलाया और सभी प्रतिनिधियों ने इस प्रस्ताव का हर्ष-ध्वनि के साथ स्वागत किया कि डा. राय सभापति का आसन संभालें।

डा. राय की देशभक्ति को चारों ओर मान्यता मिली। किसी राष्ट्रीय विद्यालय का शिलान्यास हो, राष्ट्रीय उद्योग-धंधों की कोई प्रदर्शनी हो, कोई राजनीतिक सम्मेलन हो, सभी जगह डा. राय को उद्‌घाटन या सभापतित्व के लिए आमंत्रित किया जाने लगा।

१९२० और १९३० के दस वर्षों में उन्होंने लगभग दो लाख मील का दौरा किया और भारत के कोने-कोने में अपना संदेश पहुंचाया।

: आठ :

देश-प्रेम क्या है ? क्या मैदान-पहाड़, वन-उपवन, नदी-सागर, इनसे प्रेम करना देश-प्रेम है ? नहीं, यह तो प्रकृति-प्रेम है। देश-प्रेम का अर्थ है उस जनता से प्रेम करना जो इन मैदानों-पहाड़ों, वनों-उपवनों, नदियों-सागरों की भौगोलिक सीमा में रहती है। उसके दुख-दर्द को अपना समझना और उनको दूर करने के उपाय करना—यही देशभक्ति है।

डा. राय वैज्ञानिक थे। भारतीय विज्ञान की उन्नति करना उनके लिए देशभक्ति का काम था। फिर भी वह स्वतंत्र, स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा और अछूतोद्धार के लिए काम करने में पीछे नहीं रहे।

उनके देश-प्रेम का और भी गहरा परिचय मिला अकाल और बाढ़ के दिनों में।

१९२१ में चौथी बार वह इगलैंड की यात्रा करके लौटे थे। तभी छुटपुट समाचार मिले कि खुलना

जिले के दक्षिणी भाग में अकाल पड़ा है। हर वर्ष की भांति इस बार भी डा. राय गर्मी की छुट्टियों में अपने गांव पहुंचे। उन्होंने अपनी आंखों से वहां की हालत देखी तो रोंगटे खड़े हो गये।

उन दिनों अंग्रेज कलक्टर ही 'माई-बाप' हुआ करता था। इस 'माई-बाप' ने हालत पर परदा डालने में कोई कसर बाकी नहीं रखी। उसकी विज्ञप्ति में कहा गया था : "लगभग हर गांव में खूब फल हैं। छोटे ताल-तलैयों से बच्चे भी मछली पकड़ सकते हैं। दूध तो इतना है कि मांगने भर की देर रहती है।"

डा. राय जानते थे कि सरकारी रिपोर्टें कैसे बनती हैं। सरकार कमिश्नर की रिपोर्ट पर विश्वास करती है। कमिश्नर को जिले के कलक्टर का भरोसा करना पड़ता है। कलक्टर थानेदार से रिपोर्ट मांगता है। थानेदार गांव की पंचायत से रिपोर्ट मांगता है। गांव में चौकीदार सर्वशक्तिमान होता है। सो, नीचे के ये सारे नौकर जानते हैं कि ऊपर वाले अफसर कैसी रिपोर्ट पाकर खुश होंगे। बस, वैसी ही रिपोर्ट भेज दी जाती थी।

शिमला और दार्जिलिंग की पहाड़ियों के शीतल वायुमण्डल में बैठी सरकार इन्हीं रिपोर्टों पर अमल कर रही थी।

इन नौकरशाहों को भला इतना सोचने-समझने का समय कहां कि खुलना के दक्षिणी इलाकों में (जो सुन्दर वन कहलाते हैं) फलों के पेड़ लगते ही नहीं। वहां के जलवायु में फलों के पेड़ जमते ही नहीं।

और दूध ? दूध सस्ता होने की बात लो। यह भी अकाल का ही चिह्न है। अनाज का अकाल पड़ जाय तो माता-पिता अपने बच्चों तक का दूध बन्द कर देते हैं। उस दूध को बेच कर दो मुट्ठी चावल जुटाना ज्यादा पसन्द करते हैं। किन्तु अकाल के दिनों में पैसे का भी तो अकाल पड़ जाता है। इस तरह उस दूध को पूछने वाला कोई नहीं मिलता।

डा. राय ने लिखा था कि अगर देश स्वतंत्र होता तो ऐसे कलक्टर के खिलाफ सख्त कार्रवाई की जाती और सरकार, यानी मंत्रिमंडल, को निकाल दिया जाता। लेकिन उस समय यह सब कहां सम्भव था।

बंगाल के देशभक्तों ने सरकार की नींद तोड़ने के लिए अखबारों में खूब शोर-गुल मचाया। पर, इतना ही काफी नहीं था।

डा. राय ने अकाल-पीड़ित लोगों की सहायता के लिए अपील की। सरकार ने तो कोई ध्यान नहीं दिया, पर जनता सहायता के लिए उमड़ पड़ी।

अब सुनो बाढ़ की बात।

अक्तूबर १९२२ में उत्तरी बंगाल बाढ़ की चपेट में आ गया। ब्रिटिश सरकार ने यदि जनता की मांग पर ध्यान दिया होता तो बाढ़ से भयंकर बरबादी न होती।

बात यह है कि एक साल पहले जनता ने मांग की थी कि ब्रिटिश रेलवे कम्पनी वहां पुल बनवाये। रेलवे कम्पनी ने लाइनें बिछा कर नालों का बहाव रोक दिया था। अनपढ़ गांव वाले भी समझ गये थे कि इससे पानी की निकासी का रास्ता रुक जायगा और बाढ़ आये बिना न रहेगी।

रेलवे कम्पनी इसकी फिक्र क्यों करती? पुल बनाने में रुपया खर्च होता, यानी कम्पनी के मुनाफे मारे जाते। सो, गांव वालों की दरखास्त पर रेलवे कम्पनी ने और सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया।

बाढ़ से ५ लाख से अधिक जनता बरबाद हुई; ६-७ करोड़ रुपये का नुकसान हुआ सो अलग। इस जनता को फिर से अपने पैरों पर खड़ा करने की आवश्यकता थी।

अखबारों में एक अपील प्रकाशित की गयी और सहायता समिति बनाने के लिए कलकत्ता में एक सभा की गयी।

जानते हो इस सहायता समिति का अध्यक्ष किसे चुना गया?

डा. राय को!

इस बार डा. राय अध्यक्षता स्वीकार करने में हिचक रहे थे, क्योंकि अभी खुलना के अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए वे जनता के सामने हाथ फैला चुके थे। लेकिन उपस्थित जन-समुदाय ने उनकी एक न सुनी और उन्हीं को अपना अगुआ बनाया।

कलकत्ता विश्वविद्यालय का साइंस कालेज सहायता-कार्य का केन्द्र बन गया। डा. राय यहीं तो प्राध्यापक थे। उन्हें सुभाषचन्द्र बोस, प्रोफेसर मेघनाद साहा जैसे योग्य, उत्साही और लगनशील युवकों का सहयोग प्राप्त था। बंगाल के कोने-कोने से युवक स्वयंसेवक सहायता-कार्य में हाथ बंटाने के लिए उमड़ पड़े। देश भर से रुपया जमा हुआ।

सितम्बर १९३१ में एक बार फिर उत्तरी और पूर्वी बंगाल में बाढ़ का प्रकोप हुआ और इस बार भी "संकट निवारण समिति" ने डा. राय के ही हाथों में नेतृत्व सौंपा।

सहायता-कार्य से बंगाल के युवकों को, पढ़े-लिखे नौजवानों को, बड़ी सीख मिली। वे गांव-गांव गये, अपने देशवासियों की दुर्दशा अपनी आंखों से देखी।

इन्हीं स्वयंसेवकों में एक स्वयंसेवक क्षितीश चन्द्र दास गुप्ता थे। वह एक गांव की झोपड़ी में घुसे तो उन्हें कोठरी के कोने में दो गन्ने दिखायी दिये। किसान ने फौरन बताया कि ये गन्ने नहीं थे। वास्तव में वह केले का तना था। उसकी ऊपरी पर्तें उतार ली गयी थीं, इसलिए वह गन्ना जैसा दिखायी देता था। ये "नकली" गन्ने थे। बच्चे जब भूख से रोने लगते और खाने को मांगते तो उनकी मां उस नकली गन्ने का एक टुकड़ा उनके हाथ पर रख देती। बच्चे उसे गन्ना समझ कर चबाने और चूसने लगते। धीरे-धीरे वे थक जाते और रोना बंद कर देते।

क्षितीश बाबू उस नकली गन्ने के चूसे हुए टुकड़े उठा कर कलकत्ता ले आये। कलकत्ता के विज्ञान कालेज में उनको रखा गया। हजारों लोगों ने उनको देखा; देश की दुर्दशा देखी।

एक दूसरे गांव में क्षितीश बाबू ने इससे भी करुण दृश्य देखा। वह एक झोपड़ी की रसोई में पहुंचे तो दो बालक एक कोने में बैठे कुछ खा रहे थे। देखने से मालूम हुआ कि वह कोचू नामक जंगली पौधे की जड़ थी जिसको उबाल कर खाने लायक बनाया गया था। पिता तो क्षितीश बाबू से बात करने में लग गये, तभी

६ बरस की एक लड़की आयी और उसने उस कटोरी पर हाथ मार दिया। पिता हें-हें करके मना करते ही रह गये और वह लड़की पलक मारते सब चट कर गयी। दोनों छोटे बालक चीख कर रो पड़े। जिस बर्तन में यह पकाया गया था, वह देखा गया तो खाली मिला।

यह थी हमारे देश की दशा उन दिनों!

ऐसे करुण दृश्यों को देख कर या उनके बारे में सुन कर, किसका हृदय न विद्रोह कर उठेगा? बंगाल के शिक्षित नवयुवक यह दुख-गाथा घर-घर ले गये। एक तरह से अनपढ़ और बेजबान जनता को नयी जबान मिली—उनकी आवाज सिर्फ बंगाल में ही नहीं, देश भर में गूंजी। देश में अंग्रेज शासकों के खिलाफ घृणा बढ़ गयी। गुलामी का जुआ उतार फेंकने का संकल्प दृढ़ हुआ।

डा. राय ने इन नौजवानों को यह भी बताया कि इन किसानों के शोषण पर ही सरकार टिकी हुई है। जूट (पटसन) के रूप में ये किसान दौलत पैदा करते हैं। इंगलैंड में बनी हुई चीजें—खास तौर से कपड़ा—खरीद कर अंग्रेजों को वे दौलत देते हैं। जूट को अंग्रेज विलायत ले जाते थे। बाहर ले जाने के

ऊपर सरकार टैक्स वसूल करती थी। बाढ़ के वर्षों में सरकार ने ४०-५० करोड़ रुपये इस टैक्स से प्राप्त किये। यदि इसका एक फी सदी भी, यानी १०० में से एक रुपया भी, सरकार किसानों की भलाई के लिए खर्च करती तो किसानों को बाढ़ और अकाल की मुसीबत से छुटकारा मिल जाता।

सहायता-कार्य से एक और भी नयी चीज मिली : हिन्दू-मुसलमान एकता—सारे देश की एकता। जिन इलाकों में जनता बाढ़ की शिकार हुई, वहां सौ में से अस्सी लोग मुसलमान थे। जो सहायता इकट्ठी हुई, उसमें दान देने वालों में सौ पीछे नब्बे हिन्दू थे।

यह सहायता-कार्य मानवीय भाईचारे का काम था। देश-सेवा और देशभक्ति का काम था। स्वतंत्रता और राष्ट्रीय एकता का काम था। इसीलिए डाक्टर राय ने इसको इतना अधिक महत्व दिया।

: नौ :

दुबला-पतला शरीर। कमजोर पाचन-शक्ति। कभी-कभी रात भर नींद न आने की बीमारी।

यह थी हमारे वैज्ञानिक की दशा। साहित्य और इतिहास का विद्वान। कई भाषाओं का ज्ञाता। उद्योग-धंधों का संस्थापक। देश-सेवा और जन-सेवा में सदा आगे रहने वाला।

आखिर उनको इतने सारे काम करने की शक्ति कहां से प्राप्त होती थी? वह इतने काम करने का समय कहां से निकाल पाते थे?

डा. राय ने ऐसे ही प्रश्नों का उत्तर देने के लिए नौजवानों की सभा में एक व्याख्यान दिया था जिसका विषय था : "समय का उपयोग और दुरुपयोग।"

डा. राय कहा करते थे—"मैं पूरी तरह विश्वास करता हूं कि यदि मनुष्य ठीक समय पर ठीक काम करे तो वह अपने को दस गुना शक्तिशाली बना लेता

है।" यह बात डा. राय के जीवन-अनुभव का निचोड़ थी।

गर्मी हो या जाड़ा, वह सुबह पांच बजे उठ बैठते। थोड़ा सा घूम आते और हलका-सा नाश्ता करके ६ बजे पढ़ने बैठ जाते। बहुत से नौजवान जब तक सो कर उठें, तब तक युवक प्रफुल्ल चन्द्र मधुमक्खी की तरह बहुत सा ज्ञान बटोर लेते। इंगलैंड और योरप की यात्रा में भी उन्होंने यह नियम नहीं तोड़ा।

दिन भर वह एक-एक मिनट का हिसाब रखते। शाम को मैदान में टहलने जाते, जिसे वह 'मैदान क्लब" कहा करते थे। रात को थोड़ा काम करके जल्दी सो जाते।

मैं तुम्हें उनकी डायरी के कुछ हिस्से सुनाऊं तो तुम्हें शायद उनकी दिनचर्या का कुछ ज्ञान हो जाय। अच्छा लो सुनो ;

१५ जून १९२०

७-८.३० बजे सुबह : जर्मन केमिकल सोसाइटी (रसायन विज्ञान की खोज सम्बंधी पत्रिका) पढ़ी। ९-१२ : प्रयोगशाला पहुंचे। १.३०-२.३० फिर प्रयोगशाला में,—मोटर लेकर पाटरी वर्क्स (चीनी मिट्टी के बर्तनों का कारखाना) दौड़ा गया; ४.३० बजे तक लौट आये; फिर प्रयोगशाला में पहुंचे। ५-६ बजे शाम : जोला का "धन" (उपन्यास) पढ़ा! ६.१५-७.३० सिटी कालेज की कौंसिल की बैठक में; ८-९.३० बजे रात मैदान क्लब।

और सुनो—

१२ नवम्बर १९२१

प्रातः टेन का "अंग्रेजी साहित्य का इतिहास" पढ़ा। लगभग ९ बजे प्रयोगशाला पहुंचे, स्टीम नैविगेशन कम्पनी (जहाजरानी) के एजेन्ट (प्रबंधक) से मुलाकात की; कुछ देर बाद बंगाल कैमिकल्स के मैनेजर से कुछ गम्भीर विषयों पर वार्ता; कर्जे का प्रबंध किया—फिर पाटरी वर्क्स के मैनेजर से मिला; दोपहर प्रयोगशाला में बीता; बंगाल कैमिकल्स के डायरेक्टरों की एक महत्वपूर्ण बैठक में भाग लिया।

अब वृद्धावस्था का एक दिन देखो :

२८ अगस्त १९३१

सुबह ६.४५ से ९ तक अध्ययन।
९ से ९.३० तक अखबार पढ़े।
९.३० से १० तक चर्खा काता।

१० से ११.४५ तक प्रयोगशाला में। साथ ही बाढ़ पीड़ितों के सहायता-कार्य पर ध्यान दिया; अनेक पत्रों और तारों का जवाब दिया; स्कूलों के बच्चे, विद्यार्थी तथा अन्य दानकर्ता अपना-अपना हिस्सा लाये।

भोजन और विश्राम १२ से १.३० बजे दोपहर तक।

१.३० बजे भाग कर भवानीपुर पहुंचा, पदमपुकुर और दक्षिणी उपनगरीय स्कूलों की कक्षाओं में गया और बाढ़-पीड़ितों के लिए उन्होंने जो सहायता भेजी है, उसके लिए धन्यवाद दिया। और भी सहायता एकत्र करने का आवाहन किया। आशुतोष कालेज भी गया। ३.१५ बजे शाम को खुले मैदान में एक सभा में भाषण दिया। ३.४५ पर लौटा। अनेक पत्रों और मनीआर्डर-रसीदों पर दस्तखत किये। फिर प्रयोगशाला में।

४ से ५ विश्राम यानी **क्रामवेल** पढ़ डाला।

५.३० बजे महात्मा जी (गांधी जी) को तार भेज कर उनके अभियान की सफलता के लिए शुभकामना भेजी और फौरन भाग कर शिक्षा मंदिर गया तथा उद्घाटन सम्पन्न किया।

७ बजे शाम को मैदान में। वहां ८.३० रात तक रहा।

डायरी देखने से स्पष्ट है कि डा. राय एक-एक मिनट का हिसाब रखते थे। सचमुच वक्त बड़ा कीमती है। डा. राय जर्मन कवि और दार्शनिक गेटे की इस उक्ति की सदा याद दिलाया करते थे: "समय अनन्त रूप से लम्बा है; अगर हम उसको पूरी तरह इस्तेमाल करें तो अधिकांश चीजें उसके दायरे के अन्दर आ सकती हैं।"

डा. राय अक्सर कलकत्ता से बाहर बुलाये जाते थे। नयी जगह में उनके दर्शनार्थियों की भीड़ लग जाती। हर तरह के लोग सुबह से शाम तक घेरे रहते। किन्तु इस बीच एक वक्त ऐसा भी होता जब कोई मिलने न आता। वह वक्त होता दोपहर का। और डा. राय इस वक्त को इस्तेमाल करना न भूलते। इस बीच वह कोई न कोई किताब पढ़ डालते।

रेल का सफर ऊंघ कर या गपशप लगा कर काट दिया जाता है। डा. राय इसका भी उपयोग करने में न चूकते। सफर के लिए वह मोटे टाइप की कोई किताब चुन लेते ताकि रेल में पढ़ने में कठिनाई न हो।

गपशप, हंसी मजाक—अच्छी चीजें हैं। इनसे

चित्त प्रसन्न होता है। स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। किन्तु इनकी भी एक हद होती है। क्लब में घंटों गपशप लड़ाने और वक्त बरबाद करने में क्या तुक है? डा. राय को इससे सख्त चिढ़ थी। दिन भर प्रयोगशाला में काम करने के बाद डा. राय घूमने-टहलने निकल जाते—मैदान ही उनका क्लब था।

मित्रों से कोरी गपशप से मनोरंजन तो होता है किन्तु ज्ञान नहीं बढ़ता। डा. राय ने अपने मनोरंजन का साधन बनाया पुस्तकों को।

पढ़ने के बारे में डा. राय की सलाह ध्यान देने योग्य है। अंधाधुंध किताबें पढ़ने से कोई लाभ नहीं होता। इसलिए, कोई उद्देश्य निश्चित करके ही किताब छांटनी चाहिए। डा. राय मनोरंजन के लिए उपन्यास पढ़ते थे। घटिया किस्म का नहीं, किसी बड़े लेखक का उपन्यास। घटिया किस्म का उपन्यास पढ़ना वैसा ही है जैसे किसी की बकवास सुनने बैठ जाना। कभी-कभी उपन्यासों से भी ज्यादा दिलचस्प होती हैं इतिहास और जीवन-चरित्र की पुस्तकें। डा. राय को इनमें कथा-कथानियों से अधिक मजा आता था।

जल्दी-जल्दी, एक के बाद एक किताब पढ़ते जाने से भी कोई लाभ नहीं। इससे पढ़ी हुई किताब

पर सोचने-समझने का समय नहीं मिलता। डा. राय जो किताब पढ़ते, उस पर सोच-विचार करते और देखते कि उसकी बातें कहां तक ठीक हैं, कहीं गलत तो नहीं हैं। इससे विचार करने और आलोचना करने की शक्ति बढ़ती है। और, जो आदमी गलत-सही का फैसला कर सकता है, वही कोई नयी बात भी खोज सकता है। ऐसा आदमी ही वैज्ञानिक या विचारक हो सकता है।

समय के सही उपयोग में कभी-कभी व्यक्ति का अपना स्वभाव आड़े आ जाता है। मान लो हमें कहीं ९ बजे जाना है—अब, ८ बजे से ही परेशान हैं कि वहां ठीक समय पर कैसे पहुँचेंगे। बस, ८ से ९ तक का समय खराब हो गया। योजना के अनुसार काम करने के लिए धैर्य की जरूरत होती है।

स्वभाव के सम्बन्ध में एक बात और कह दूं। कुछ लोग होते हैं जो जरा-जरा सी बात पर तुनक उठते हैं, बड़बड़ाने लगते हैं, घंटों उनका मिजाज गरम रहता है। समय यों ही बरबाद हो जाता है। डा. राय ऐसी स्थिति को हंस कर, मुस्करा कर या शान्ति से भला-बुरा सोच कर टाल देते।

मनुष्य का एक और शत्रु है: ईर्ष्या। किसी को बढ़ते या सफल होते देखा कि जलन होने लगी। अब,

इस जलन से उस भले आदमी का क्या बिगड़ेगा ? बिगड़ेगा अपना ही । कांटे की तरह ईर्ष्या दिल में चुभा करेगी । मन की शान्ति खत्म हो जायगी । जो समय अच्छी बातें सोचने-समझने और काम करने में लगना चाहिए, वह कुढ़न में चला जायगा । डा. राय हमेशा इस बुराई से बचते थे । उनका कहना था, "मस्तिष्क और शरीर में घना सम्बंध है । जो लोग किसी के बारे में बुरे भाव रखते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि उनके मस्तिष्क की शान्ति खत्म हो रही है ।"

देहात से आये हुए उस उजड्ड बालक प्रफुल्ल ने इन्हीं गुणों को अपनाकर उन्नति की । धीरे-धीरे वह देश का महान वैज्ञानिक और शिक्षक बन गया ।

"मैंने एक योरपियन को कहते सुना है : अगर मि. गान्धी दो प्रफुल्ल चन्द्र राय और बना सकते तो वह इस वर्ष के अन्दर ही (१९२२ में) स्वराज्य प्राप्त करने में सफल हो जाते ।"

ये शब्द किसने कहे थे ? एक अंग्रेज ने ।

यह अंग्रेज इंगलैंड के "मैन्चेस्टर गार्जियन" नाम के अखबार का प्रतिनिधि था । वह हमारे देश में रहता था और यहां के बारे में अपने अखबार को खबरें

भेजता था । उसने यह बात एक खबर में कही थी जो उस अखबार में ११ नवम्बर १९२२ को छपी थी ।

कितनी सच्ची है यह बात ! देश को स्वतंत्र करने के लिए प्रफुल्ल चन्द्र राय जैसे वैज्ञानिकों की आवश्यकता थी । उनकी तरह का विद्वान और शिक्षक ही देश को जगा सकता था । उनकी तरह गरीब जनता को प्यार करने वाला व्यक्ति ही जन-सेवा की भावना से काम कर सकता था ।

हमारे देश ने डा. जगदीश चन्द्र बसु और सी. वी. रामन जैसे वैज्ञानिक पैदा किये; रवींद्रनाथ ठाकुर जैसे महान कवि और शरतचन्द्र तथा प्रेमचन्द जैसे कथा-लेखकों ने देश की चेतना जगायी; भगत सिंह और चन्द्र-शेखर आजाद जैसे शहीदों ने स्वतंत्रता की वेदी पर अपना सर्वस्व होम कर देने का आदर्श रखा; तिलक, गोखले और गांधी के नेतृत्व में इन सारी प्रतिभाओं ने मिल कर स्वतंत्रता के विराट आन्दोलन का निर्माण किया । इस आन्दोलन के वेग के कारण अंग्रेज साम्रा-जियों के पांव उखड़ गये । ऐसे समय में डा. राय पीछे न रहे । उन्होंने सदा आगे बढ़ कर देश और विज्ञान की सेवा की ।

: दस :

आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय स्वतंत्रता के दिन नहीं देख सके। १४ जून १९४४ को वह संसार से विदा हो गये। काश, वह जीवित होते और देखते कि उनका सपना पूरा हो गया है।

पर आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय के सपने का एक ही भाग पूरा हुआ है—आजादी का सपना।

आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय के सपने का एक और भाग था। वह चाहते थे कि देश विज्ञान के क्षेत्र में पीछे न रहे। विज्ञान के आधार पर नये-नये उद्योग-धंधे कायम हों, गरीबी और बेकारी दूर हो।

इस समय आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय जीवित होते तो हमसे कहते : दुनिया के सबसे आगे बढ़े हुए देशों की पांत में भारत को खड़ा करो, विज्ञान का और अधिक विकास करो, देश से गरीबी और पिछड़ेपन का नाम-निशान मिटाओ, सड़े-गले दकियानूसी विचारों को तिलांजलि दो, देश के निर्माण में हाथ बटाओ।

●